Abhijnanas'akuntalam :
Three Versions of the Devanagari Recension
(New Researches in the field of unknown oldest manuscripts)

By
Prof. Vasantkumar M. Bhatt
Former Director, School of Languages,
Gujarat University,
AHMEDABAD – 380 009
Email:- v.k.bhatt53@gmail.com

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण – एक नयी गवेषणा ।।

वसन्तकुमार म. भट्ट
(निवृत्ति – काले)
शास्त्रचूडामणि, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग,
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण- 2019

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण – एक नयी गवेषणा ।।

वसन्तकुमार म. भट्ट
शास्त्रचूडामणि, संस्कृत एवं भारतीय विद्या विभाग,
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण

भूमिकाः—(Review of the published literature) सर विलियम जोन्स ने ई.स.1789 में अभिज्ञानशकुन्तलम् नाटक का सब से पहला अंग्रेजी अनुवाद किया था । तथा नाट्यकार के रूप में कालिदास का कितना महत्त्व है यह युरोपिय प्रजा को समझाने के लिए कालिदास को "भारत का शेक्सपियर" कहा । इस अंग्रेजी अनुवाद का प्रकाशन करते समय उनको यह मालूम नहीं था कि इस नाटक की अन्यान्य वाचनाएं भी है । किन्तु वह पहला अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होने के बाद इस नाटक का पाठ कितनी वाचनाओं में प्रवाहित हुआ है ? उसकी गवेषणा भी शूरु हुई । ई. स.1842 में ओटो बोटलिंग ने देवनागरी पाण्डुलिपियों के आधार पर इस नाटक की देवनागरी वाचना के (लघु)पाठ का सर्व प्रथम समीक्षित पाठ-सम्पदान प्रकाशित किया । तत्पश्चात् मोनियर विलियम्स ने 1876 में कुछ अन्य पाण्डुलिपियों के आधार पर देवनागरी वाचना का पुनः एक बार समीक्षित पाठ तैयार किया । इनके बाद डॉ. रिचार्ड पिशेल ने इस नाटक की बंगाली पाण्डुलिपियों के आधार पर, बंगाली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन तैयार किया । जिसका हार्वर्ड ओरिएन्टल सिरीझ (1889) में प्रकाशन हुआ है । इसमें इस नाटक का जो बंगाली पाठ था वह बृहदाकार वाला था । प्रॉफे. पी. एन. पाटणकर जी ने उसी वर्ष में (ई. स. 1889 में) कतिपय नवीन देवनागरी पाण्डुलिपियाँ का विनियोग करके, "देवनागरी वाचना का शुद्धतर समीक्षित पाठ" तैयार किया । जिसका द्वितीय संस्करण ई.स.1902 में निकला था । तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रयास है प्रॉफे. कार्ल कैप्लर का । जिन्होंने ई.स.1909 में देवनागरी वाचना का चौथा समीक्षित पाठसम्पादन प्रकाशित किया । इसमें उन्होंने उच्चतर समीक्षा के मानदण्ड से परम्परागत पाठ की परीक्षा करते हुए "तथाहि", "कुतः" एवं "अपि च" जैसे निपातों के द्वारा प्रस्तुत हो रहे अनेक श्लोकों को निकाल दिये, जिसमें से एक "गान्धर्वेण विवाहेन0" वाला श्लोक भी था[1] । इसी तरह से कालान्तर में भी देवनागरी वाचना के अनेकानेक संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं । साहित्य अकादेमी, दिल्ली के द्वारा महा-महोपाध्याय प्रॉफे. गौरीनाथ शास्त्री, कुलपति, बी. एच. यु., वाराणसी के सम्पादित किये गये देवनागरी वाचना का पाठ प्रकाशित हुआ । उसी सिलसिले में प्रॉफे. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी (वाराणसी) ने जब कालिदास ग्रन्थावली का सम्पादन ई.स. 1986 में किया तो उसमें भी इस नाटक का देवनागरी पाठ ही प्रकाशित किया । यहाँ उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी पाठ-सम्पदाकों ने जिस देवनागरी वाचना के पाठ का प्रकाशन किया है, उनमें इस नाटक का केवल लघुपाठ ही प्रकाशित किया है । तथा इन सभी पाठसम्पादकों ने केवल दश अथवा बारह पाण्डुलिपियों का ही विनियोग करके अपने अपने तथाकथित समीक्षित पाठ तैयार किये हैं । (डॉ. गौरीनाथ शास्त्री एवं डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी जैसे अग्रगण्य अर्वाचीन विद्वानों ने तो प्रायः अपने पुरोगामी सम्पादकों के मुद्रित संस्करणों का ही प्राधान्येन[2] विनियोग किया है ।) मतलब कि इन सभी विद्वानों के पाठसम्पादनों में से हम यह नहीं जान पाते हैं कि देवनागरी वाचना का प्राचीनतम पाठ कैसा है, और वह पाठ

[1] Kalidasa’s S’akuntala, (KÜRZERE Textform), Ed. Carl Cappeller, Leipzing, 1909

[2] श्रीरेवाप्रसाद जी ने कालिदास ग्रन्थावली (1986) में "भू.मा." (=भूयसी मातृका) संकेत से ऐसा निर्देश दिया है कि उन्होंने बहुत पाण्डुलिपियों का अवलोकन किया है । किन्तु किस ग्रन्थभण्डार की, और किस क्रमांक वाली पाण्डुलिपियाँ देखी हैं ? ऐसा कोई प्रकट निवेदन वहाँ नहीं है ।

क्रमशः कितने स्वरूपों में आविष्कृत किया गया है, अथवा लघुपाठ कब आकारित हुआ ? । क्योंकि ऐसा लगता है कि इस नाटक की सेंकडो देवनागरी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होते हुए भी, किसी भी विद्वान् ने दश-पँदरह से अधिक पाण्डुलिपियाँ देखी ही नहीं है । यद्यपि राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली ने पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण एकत्र किया है एवं न्यू केटलोगस केटलोगरम्, मद्रास (ई.स.1965) में भी पाण्डुलिपियों की जानकारियाँ उपलब्ध थी । परन्तु, अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना का सही समीक्षित पाठ तैयार करने के लिए किसी भी विद्वान् ने अद्यावधि इन जानकारियों का विनियोग नहीं किया है ।।

[1]

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रचलित पाठ की समस्या:- (Identification of the problem – 1) ई.स.1842 से शूरु करके ई.स.1986 तक, इस नाटक की देवनागरी वाचना के अनेकानेक तथाकथित समीक्षित पाठ-सम्पादन प्रकाशित होते रहे हैं । परन्तु उनमें दो तरह की मर्यादाएँ प्रविष्ट हुई हैः- (क) उनमें कहीं पर भी समानता नहीं है । क्योंकि मोनियर विलियम्स, प्रॉफे. पी. एन. पाटणकर, श्रीरेवाप्रसाद जी आदि के सम्पादनों में, स्पष्टतया बंगाली-काश्मीरी-आदि वाचनाओं में प्रचलित हुए पाठान्तरों का भी स्वीकार किया गया है । उनको हम कथमपि "समीक्षित पाठसम्पादन" नहीं कह सकते हैं । इन सब को तो संदोहन पद्धति / मधुकर वृत्ति से (इकलेक्टीक प्रिन्सीपल पर) तैयार किया गया सामान्य संस्करण ही कहना उचित है । तथा (ख) पूर्वोक्त सभी विद्वानों ने जो भी दश-पंदरह पाण्डुलिपियाँ मिल गई उनके आधार पर, अपना अपना पाठसम्पादन तैयार कर लिया है । एवञ्च, इन अल्पसंख्यक पाण्डुलिपियों के आधार पर, उन्होंने सीधे ही कवि-प्रणीत मौलिक पाठ को निर्धारित करने का साहस किया है । (ग) किसी विद्वान् के मन में "इन पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ किसी नटमण्डली ने अल्पसमय में इस नाटक को रंगमंच पर खेलने के लिए बनाया हुआ (रंगावृत्ति का) पाठ हो सकता है" ऐसी आशंका भी पैदा नहीं हुई[3] ! इन तीन कारणों से, पुरोगामी विद्वानों ने हमारे सामने जो भी पाठ रखा है वह परस्पर में विसंवादी है, और प्रत्येक पाठ आन्तर-विरोध से भरा है । (तथा देवनागरी पाण्डुलिपियों का केवल संक्षिप्त पाठ ही उन्होंने सम्पादित किया है । इस संक्षिप्त पाठ के अलावा किसी दूसरे बृहत्पाठ से वे अवगत ही नहीं थे ।) इस हकीकत को एक निदर्श से समझने के लिए इस नाटक के केवल तीसरे अंक की श्लोकावली का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए । तद्यथा –

श्लोक का क्रम एवं उनके प्रतीक	ओटो-बोट लिंग 1842	मोनि. विलि यम्स 1876	पी.एन. पाटण-कर 1889	कार्ल कैप्लर 19 09	शारदा रंजन राय 1908	एम. आर. काळे	गौरी नाथ शास्त्री 1983	रेवा प्रसाद द्विवेदी 1986	
1 का कथा बाणसन्धाने0	1	1	1	1	1			1	
2 जाने तपसो वीर्यम्0	2	2	2	2	2			2	
3 तव कुसुमशरत्वम् शीत0	3	3	3	4	3			3	

[3] किसी भी वाचना के किसी भी पाठसम्पादक ने इस नाटक का उपलब्ध हो रहा पाठ रंगावृत्ति का हो सकता है या नहीं ? इस विषय में विस्तार से या दो-चार वाक्यों में भी परामर्श किया हो ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है । इस दिशा में मैं ने अग्रेसर होकर, "अभिज्ञानशकुन्तला-नाटकस्य पञ्च रङ्गावृत्तयः" नामक एक विशाल-काय ग्रन्थ तैयार किया है, जो राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली में प्रकाशन के लिए स्वीकृत हुआ है ।

4 अद्यापि नूनं हरकोप0	0	4	4	3	0			0	
5 अनिशमपि मकरकेतो0	0	5	5	0	4			4	
6 वृथैव संकल्पतशतैर्0	0	6	0	0	0			0	
7 सम्मीलन्ति न तावद्बन्ध0	0	7	0	0	5			5	
8 शक्यमरविन्दसुरभि0	4	8	6	5	6			6	
9 अभ्युन्नता पुरस्तादाव0	5	9	7	6	7			7	
10 स्तनन्यस्तोशीरम्0	6	10	8	7	8			8	
11 क्षामक्षामकपोलमान0	7	11	9	8	9			9	
12 पृष्टा जनेन समदुःखेन0	8	12	10	9	10			10	
13 स्मर एव तापहेतु0	9	13	11	10	11			11	
14 इदमशिशिरै0	10	14	12	11	12			12	
15 अयं स ते तिष्ठति संग0	11	15	13	12	13			13	
16 उन्नमितैकभ्रूलतम्0	12	16	14	13	14			14	
17 तुज्झ ण आणे हिअअं0	13	17	15	14	15			15	
18 तपति तनुगात्रि0	14	18	16	15	16			16	
19 संदष्टकुसुम0	15	19	17	16	17			17	
20 इदमनन्यपरायणम्0	16	20	18	17	18			18	
21 परिग्रहबहुत्वेपि द्वे 0	17	21	19	18	19			19	
22 किं शीतलैः क्लमवि0	18	22	20	19	20			20	
23 उत्सृज्य कुसुमशयनं0	19	23	21	20	21			21	
24 गान्धर्वेण विवाहेन0	20	24	22	0	22			22	
25 अपरिक्षतकोमलस्य0	21	25	23	21	23			23	
26 मुहुरंगुलिसंवृताधरो0	22	26	24	22	24			24	
27 तस्याः पुष्पमयी 0	23	27	25	23	25			25	
28 सायंतने सवनकर्म0	**24**	**28**	**26**	**24**	**26**			**26**	

यहाँ परीक्षण करने से, सर्व प्रथम दो-तीन बिन्दु ध्यान में आ रहे हैं । जैसे कि, 1. तृतीयांक के पाठ में स्वीकार्य एवं अस्वीकार्य बने श्लोकों की संख्या में समानता नहीं है । 2. इन स्वीकार्य-अस्वीकार्य श्लोकों में विवादास्पद बने वे श्लोक हैं, जो प्रथम दृश्य के आरम्भ में ही आये हुए हैं । 3. इन सभी सम्पादनों में इस नाटक का केवल लघुपाठ ही दिखाई रहा है । ऐसा क्यूं ? इस प्रश्न का वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसिद्ध समाधान तब ही मिलेगा कि जब हम प्रस्तुत अभ्यास के लिए प्राप्त की गई 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे । जिससे हम जान पायेंगे कि इस देवनागरी वाचना के अद्यावधि अज्ञात रहे प्राचीनतम बृहत्पाठ से आरम्भ करके, उसी पाठ का संक्षेपीकरण होते होते क्रमशः अनेकविध लघुपाठ आविष्कृत हुए हैं । तथा वर्तमान में प्रचलित बना संक्षिप्ततर (24 श्लोकोंवाला) लघुपाठ तो संक्षेपीकरण के अन्तिम चरण में आकारित हुआ पाठ है ।।

[2]

देवनागरी वाचना के लघुपाठ में फैली क्षतियाँ :- (Identification of the problem – 2) करीब सो-सवासो वर्षों से देवनागरी वाचना का जो पाठ (= लघुपाठ) पठन-पाठन में आरूढ हो गया है उसमें बहुविध क्षतियाँ विद्यमान है । किन्तु साहित्यरसिकों ने उनको "पश्यन्नपि न पश्यति" की तरह, पहचानी ही नहीं हैं । अथवा किसी विद्वान् ने यदि उनमें से एक-दो क्षतियाँ को पहचानी भी होगी, तो गजनिमीलिका-न्याय से उनकी ओर अनदेखी ही की होगी । अतः, इस नाटक की प्राप्य पाण्डुलिपियों का व्यापक सर्वेक्षण करना चाहिए, एवं यथासम्भव कुछ अधिक पाण्डुलिपियों को एकत्र करके उनके आधार पर एक नया समीक्षित पाठसम्पादन करना चाहिए । किन्तु इस दिशा में अग्रेसारित होने से पहले, प्रचलित देवनागरी पाठ में बहुविध क्षतियाँ विद्यमान है ऐसा जो आरोप लगाया गया है, उसका समर्थन करना अति-आवश्यक है, जिसके लिए अनेक आन्तरिक / कृतिनिष्ठ प्रमाणों का निरूपण किया जाता है :---

इस नाटक की देवनागरी वाचना के (उन्नीसवीं शती के) आरम्भिक संस्करणों में इस नाट्य-कृति का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तलम्" रखा गया है । (जैसे कि, ओटो बोह्तलिंग, मोनियर विलियम्स, एम. आर. काळे, कैप्लर, पी. एन पाटणकर, शारदा रंजन राय, गौरीनाथ शास्त्री ने इस शीर्षक को माना है ।) किन्तु निर्णय सागर प्रेस, मुंबई की आवृत्ति में एवं पं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी आदि के द्वारा "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" ऐसा शीर्षक दिया गया है । कहने का तात्पर्य यही है कि इस नाट्यकृति के शीर्षक से ही विवादास्पद परिस्थिति का आरम्भ हो जाता है । इसके साथ साथ, निम्नोक्त स्थानों की भी संदेहास्पद एवं विवादास्पद परिस्थितियों से हम अवगत होंगे :--

(क) भरत मुनि ने संस्कृत नाटकों में स्त्री-पात्र, परिजन वर्ग एवं विदूषक के लिए शौरसेनी प्रकार की प्राकृत भाषा का विधान किया है । किन्तु कालिदास के इस नाटक की देवनागरी वाचना के पाठ में सर्वत्र महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का विनियोग हुआ दिखता है । (कालिदास के समय में, यानि प्रथम शती में तो इस महाराष्ट्री प्राकृत का आविर्भाव भी नहीं हुआ था ।) मतलब की देवनागरी वाचना के इस अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की भाषा का कलेवर भी परवर्ती काल का है ऐसा स्वतः सिद्ध होता है ।

(ख) इस नाटक में अनेक स्थान पर (आर्या छन्द में निबद्ध) प्राकृत गाथाओं का प्रयोग किया गया है । किन्तु उनमें पिंगलसूत्रोक्त आर्या छन्द का लक्षण पूर्णतया घटित नहीं होता है ।

(ग) प्रथमांक में जो भ्रमर-बाधा प्रसंग आता है, उसमें "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं ...... वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ।।" इस श्लोक का अवतार प्रकाशित संस्करणों में "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना से किया जाता है । जो नितान्त अनुचित है । क्योंकि इस श्लोक की अन्तिम पङ्क्ति देखते ही समझ में आता है कि नायक दुष्यन्त शकुन्तला के मुख पर मंडरा रहे भ्रमर के प्रति ईर्ष्या भाव प्रदर्शित कर रहा है । वह उसको स्पृहा के साथ देख ही नहीं रहा है । अर्थात् यहाँ रंगसूचना में विसंगति दिख रही है ।

(घ) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने बताया है कि- तीसरे अंक के कथाप्रवाह में जो समय-सूचक रंगसूचनाएँ दी गई हैं वे सुसंगत नहीं हैं । जैसे कि- नायक एवं नायिका को एकान्त प्रदान करने के लिए दोनों सहेलियाँ आश्रम के मृग-पोतक को लेकर चली जाती है । रंगमंच पर, मध्याह्न के समय में दुष्यन्त और शकुन्तला एकेले हैं, उन दोनों के बीच में जो बातचीत होती है, वह केवल दश उक्तियाँ तक सीमित है, उतनी क्षणों में ही रात्रि-काल का आगमन हो गया है ऐसा नेपथ्योक्ति से कहा जाता हैः-

1. **शकुन्तला** – कहं गदाओ एव्व । (कथं गते एव ।)
2. **राजा** – अलमावेगेन । नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते ।
   किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्, संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
   अङ्के निधाय करभोरु ! यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।। (3-18)
3. **शकुन्तला** – ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं । (न माननीयेषु आत्मानमपराधयिष्यामि ।)
   (*उत्थाय गन्तम् इच्छति* ।)
4. **राजा** – सुन्दरि ! अनिर्वाणो दिवसः । इयं च ते शरीरावस्था,
   उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् ।
   <u>कथमातपे गमिष्यति</u> परिबाधा पेलवैरङ्गैः ।। (3-19) (*इति बलादेनां निवर्तयति*)
5. **शकुन्तला** – पोरव, रक्ख अविणअं । मअणसंतत्तावि ण हु अत्तणो पहवामि । (पौरव, रक्ष अविनयम् । मदनसंतप्तापि न खलु आत्मनः प्रभवामि ।)
6. **राजा** – भीरु, अलं गुरुजनभयेन । दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान् न दोषं ग्रहिष्यति कुलपतिः
   अपि च,
   गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
   श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ।। (3-20)
7. **शकुन्तला** – मुंच दाव मं । भूओ वि सहीअणं अणुमाणइस्सं । (मुञ्च तावन्माम्, भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये ।)
8. **राजा** – भवतु, मोक्ष्यामि ।
9. **शकुन्तला** – कदा । (कदा ।)
10. **राजा** – अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
    अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि, गृह्यते रसोऽस्य ।। (3-21)
    (*इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति । शकुन्तला परिहरति नाट्येन* ।)
11. **(नेपथ्ये)** चक्कवाकवहुए, आमंतिहि सहअरं । उवट्ठिआ रअणी । (चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, <u>उपस्थिता रजनी</u> ।)

यहाँ पर स्पष्टतया चौथी उक्ति में राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को कहा है कि इतनी कडी धूप में तुम कुसुमशयन को छोड कर, कैसे लतावलय से बाहर निकलोगी ? । अर्थात् अभी तो मध्याह्न का समय चल रहा है । तत्पश्चात् ग्यारहवी नेपथ्य-उक्ति में कहा जाता है कि रात्रि आ गई, हे चक्रवाकवधू तुम अपने सहचर से बिदाई ले लो ।।

इस तरह से प्रणय-प्रसंग का अतिसंक्षिप्त काल में सिमट लिया जाना ऐसा सूचित करता है कि इस प्रसंग के मूल पाठ्यांश में भारी कटौती हुई होगी । मूल पाठ्यांश ऐसा रहा होगा कि जिसमें मध्याह्न के बाद सायंकाल पर्यन्त के भी कुछ संवाद रहे हो, एवं तत्पश्चात् ही रात्रि का आगमन होने की सूचना दी गई होगी ।।

(ङ) इसी तीसरे अंक के उपान्त्य श्लोक का सूक्ष्मेक्षिका से परीक्षण करने की आवश्यकता है । आश्रम-माता गौतमी शकुन्तला के शरीरदाह को मिटाने के लिए यज्ञशाला का शान्त्युदक लेकर, रंगमंच पर आती है । तथा शकुन्तला को अपने साथ लेकर उटज की ओर चली जाती है । तब भोग-वंचित दुष्यन्त, जो विटपान्तरित होकर खडा था, वह अब रंगमंच पर आ कर निम्नोक्त श्लोक में अफसोस व्यक्त करने लगता हैः-

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बीसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।। (3-23)

इस श्लोक के अधो रेखाङ्कित शब्दों से दुष्यन्त ने शकुन्तला की याद दिलाने वाली तीन चीजों का परिगणन करवाया है । जिनको सुन कर तुरंत प्रेक्षकों को स्मरण आयेगा कि इस अंक के आरम्भ में ही कहा गया है कि "एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टम् अधिशयाना सखीभ्याम् अन्वास्यते ।" यानि रंगमंच पर कुसुम-शय्या का होना यथार्थ है । उसी तरह से प्रेक्षकों को यह भी याद आयेगा कि प्रियंवदा के अनुरोध पर शकुन्तला ने "तव न जाने हृदयम्0" शब्दों वाला मदनलेख नलिनीपत्र पर उत्कीर्ण किया था । तो उसका भी रंगमंच पर होना उचित है । किन्तु दुष्यन्त ने जो तीसरी चीज का उल्लेख किया है कि शकुन्तला के हाथ में से गिरा बीसाभरण भी रंगमंच पर अभी भी मौजुद है, जिसको वहाँ छोड कर, वह लतावलय से बाहर निकल ने में समर्थ नहीं है । अब इस तीसरी चीज से जुडा हो ऐसे कोई प्रसंग का दृश्य तो (इस देवनागरी वाचना के लघुपाठ में) निरूपित हुआ ही नहीं है । इस बीसाभरण से जुडा कोई प्रसंग मूल में न हो ऐसा तो हो ही नहीं सकता । क्योंकि नाटक मात्र का यह वैश्विक नियम है कि जिस चीज का अंक में (कथाप्रवाह) में एक बार भी निर्देश किया जाता है तो उससे जुडा कोई प्रसंग होना ही चाहिए । नाटक एक समयबद्ध कला होने के कारण उसमें एक भी फिजुल चीज का निर्देश नाट्यसमीक्षकों के द्वारा असह्य माना गया है । अतः इस दृष्टि से सोचने से सूचित होता है कि शकुन्तला के हाथ से भ्रष्ट हुए इस बीसाभरण (मृणालवलय) के साथ जुडा कोई प्रसंग पहले था, लेकिन देवनागरी वाचना के इस लघुपाठ में से वह गायब हो (यानि हटाया) गया है ।

*(च)*तीसरे अंक के आरम्भ में प्रेक्षकों को कहा जाता है कि मदनसंतप्ता शकुन्तला एक शिलातल पर, पुष्पों की शय्या में लेटी हुई अवस्था में प्रविष्ट होती है । उसके आसपास में उनकी दो सहेलियाँ बैठी है और वे उसको नलिनीदल से पवन झल रही है । लेकिन शकुन्तला को कुछ सुध-बुध है नहीं । जब उसे पूछा जाता है कि क्या तुम्हें यह नलिनीपत्र का वात सुख पहुँचाता है ?, तब वह सामने प्रश्न करती है कि "क्या सहेलियाँ, मुझे पवन झल रही है ?" । यानि वह अपने आसपास कौन है, एवं क्या हो रहा है इत्यादि कुछ जानती ही नहीं है । इस गम्भीर हालात को देख कर, प्रियंवदा ने कहा है कि "अक्षमा इयम् कालहरणस्य ।" अतः अब देखना होगा कि पुष्पों पर लेटी शकुन्तला कब बैठती है, कब खडी

होती है और कब चलती है ? । देवनागरी वाचना का जो पाठ प्रचलन में आ गया है उसमें जब हम देखते है तो मालूम होता है कि सब से पहले अनसूया ने शकुन्तला के संताप का क्या कारण होगा ? वह जानने के लिए, उसको ही पूछना चाहिए ऐसा सुझाव दिया, तब रंगसूचना दी गई है कि 1. शकुन्तला "*पूर्वार्धेन शयनाद् उत्थाय*" बोलती है (:- *हला किं वक्तुकामासि*) । उसके बाद, 2. मदनलेख लिखते समय शकुन्तला को "*उपविष्टा चिन्तयति*" जैसी रंगसूचना से लेटी हुई अवस्था में से, शिलातल पर बिठाई गई है । तत्पश्चात् जब उसके मदनलेख के शब्दों को सुनते ही, नायक दुष्यन्त सहसा रंगमंच पर प्रकट होता है तब अनसूया उसका वाचिक स्वागत करती है । और उसको शकुन्तला के साथ में, (जिस शिलातल पर शकुन्तला बैठी है उसी शिलातल पर), बैठने की विज्ञप्ति करती है । तब दो रंगसूचनाएं ध्यानास्पद हैः- 3. *राजा उपविशति* । 4. *शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति* । इन दोनों रंगसूचनाओं के अनुसार अब नायक शिलातल पर बैठेगा और शकुन्तला लज्जापूर्ण भावों के साथ उसी के पास में खडी होगी । तत्पश्चात् नायक-नायिका को एकान्त मिलन का अवकाश देने के लिए दोनों सहेलियाँ वहाँ से चली जाती है । अब रंगमंच पर नायक एवं नायिका दो ही उपस्थित है, तब दुष्यन्त ने शकुन्तला के पद्मताम्रवर्णी चरणों को अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखा । तब शकुन्तला ने कहा कि माननीय व्यक्ति से ऐसी सेवा लेकर, मैं अपने आप को अपराध में डालना नहीं चाहती हूँ । यहाँ 5. रंगसूचना दी जाती है कि- "*इति उत्थाय गन्तुम् इच्छति*" । - यहाँ जिस क्रम में इन पाँच रंगसूचनाएं रखी गई है वे परस्पर में सुसंगत नहीं है । क्योंकि राजा ने जब अनसूया की विज्ञप्ति से शिलातल पर आसन ग्रहण किया, तब तो शकुन्तला के लिए (चौथी रंगसूचना से) कहा गया है कि वह लज्जा के साथ खडी हो जाती है । अब ऐसी खडी हुई नायिका को, कथाप्रवाह आगे बढते ही, दुष्यन्त कैसे कहेगा कि तुम अनुमति दो तो मैं आपके पाँव मेरी गोदी में रख कर, उनका संवाहन करने को तैयार हूँ । एवमेव, खडी हो चुकी नायिका के लिए जो पाँचवी रंगसूचना दी गई है कि *वह खडी होकर, जाने की इच्छा कर रही है* । तो वह सर्वथा विसंगति-युक्त है । इससे भी सिद्ध होता है कि देवनागरी वाचना के प्रचलित (लघु)पाठ में, मंचन के सन्दर्भ में दी गई रंगसूचनाएँ परस्पर विरुद्ध एवं विसंगति से भरी पडी है, जो कथमपि मौलिक दिखती नहीं है ।।

कवि कालिदास ने तृतीयांक में मदनसंतप्ता शकुन्तला की पुष्पों की शय्या पर लेटी हुई अवस्था वाली जो दृश्य-योजना मूल में सोची है, उसका परामर्श किया जाय तो शकुन्तला को बहुत लम्बे समय तक रंगमंच पर लेटे ही रहना है । यानि कि मदनलेख लिखते समय एवं उसको पढ कर सहेलियों को सुनाते समय भी उसे लेटी ही रहना है । तथा राजा को जब उसके साथ में (अनसूया के द्वारा विज्ञप्ति करके) बिठाया जाता है तब भी उसको लेटे ही रहना है । तत्पश्चात् दोनों सहेलियों की रंग से बिदाई हो जाने के बाद, राजा जब निम्नोक्त श्लोक से उसके पाद-संवाहन का प्रस्ताव रखे तब ही उसको पुष्पशय्या से उठना

है । कवि के द्वारा मूल में सोची गई मंचनलक्ष्यी योजना समझने के लिए यह श्लोक ही सुस्पष्ट दिशासूचक आन्तरिक प्रमाण है :--

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्,
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते,
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ[4] ।। (3-18)

अर्थात् देवनागरी वाचना के प्रकाशित संस्करणों में इस नाटक का जो पाठ पढा जा रहा है उसमें मंचनलक्ष्यी रंगसूचनाओं में पारस्परिक विरोध एवं विसंगतियाँ विद्यमान है । अतः इस सुप्रचलित पाठ को हम कथमपि श्रद्धेय एवं ग्राह्य पाठ नहीं कह सकते है ।। ऐसे देवनागरी वाचना के प्रकाशित पाठ की दुर्दशा को दस्तावेजीय प्रमाणों के आधार पर समझने के लिए हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डारों में सुरक्षित शताधिक पाण्डुलिपियाँ एकत्र करके, समीक्षित पाठसम्पादन करने का अभिनव प्रयास करना चाहिए ।।

(छ) तृतीयांक के आरम्भ में कामयमानावस्थ दुष्यन्त मालिनी-नदी के तट पर शकुन्तला और उसकी सहेलियों को ढूँढता हुआ घुमता-फिरता है । मार्ग में स्वगत-उक्ति के रूप में वह बोलता है कि –

(मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्याम् अतिसन्धीयते कामिजनसार्थः । कुतः,

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुबाणान् वज्रसारीकरोषि ।। (3-3)

(परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि ..... इत्यादि ।।

यहाँ पर, कालिदास की निरूपण-शैली को स्मरण-पट में लायेंगे तो समझ में आता है कि जिस कामदेव के वज्रसारीभूत बाणों को लेकर दुष्यन्त उसको कोसता है, वह सर्वथा तो उचित नहीं है । क्योंकि प्रेम-जन्य पीडा किसको पसंद नहीं आती है । प्रचलित देवनागरी पाठ (जिस पर राघव भट्ट ने टीका लिखी है, उस) में उपर्युक्त एकल श्लोक वाग्दोष से युक्त है । सामान्यतः कालिदास ऐसे वाग्दोषों से बचने के लिए, एक पक्ष को प्रस्तुत करके तुरन्त ही "अथवा" निपात से पक्षान्तर को प्रस्तुत करते ही है । जैसे कि, रघुवंश में कवि ने आरम्भ में तो बोल दिया कि "क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः । तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् । प्रांशु लभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः ।। मन्दः

[4] इसको स्पष्ट करते हुए टीकाकार राघव भट्ट ने लिखा है "करभोरु-पद्मताम्रौ इति पदाभ्यां चरणयोः संवाहन-योग्यत्वं ध्वनितम् । चरणावङ्के निधायेत्यनेन च स्वस्य संवाहनकौशलं ध्वनितम् । प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006, (पृ. 107)

कवियशःप्रार्थी गमिष्यामि उपहास्यताम् ।" अब, इतना बोल देने के बाद तो कवि को रघुवंश के निर्माण-कर्म से विरत हो जाना चाहिए । लेकिन इस वाग्दोष से मुक्त होने के लिए कवि अनुगामी श्लोक में कहते हैं कि, "अथवा कृतवाग्-द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः । मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्यैवास्ति मे गतिः ।। इसी तरह से अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में भी अनेक स्थान पर कालिदास ने "अथवा" निपात के द्वारा, पक्षान्तर प्रस्तुत करते हुए,वाग्दोष को निर्मूल किया है । अतः "तव कुसुमशरत्वम्0" श्लोक के बाद, निम्नोक्त श्लोक का होना अनिवार्य लगता हैः—

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे ।
यदि मदिरायतननां ताम् अधिकृत्य प्रहरति ।। (3-4)

यानि जिस कामदेव ने वज्रसारीकृत बाण दुष्यन्त पर छोडे है, वे बाण यदि उस मदिरायतनयना शकुन्तला के सन्दर्भ में छोडे हैं तो, वह उसको अभिमत है, रुचिकर है । इस तरह से, पूर्वोक्त श्लोक के द्वारा दुष्यन्त के कथन में जो एकपक्षीयता का प्रविष्ट होती है, उसको निर्दुष्ट करने के लिए यह दूसरे श्लोक का होना आवश्यक है, और जो कवि की शैली के अनुरूप भी है । फिर भी राघव भट्ट ने अपने देवनागरी पाठ में से उसको हटा दिया है । एवमेव, परवर्ती काल के अनेक पाठसम्पादकों ने इस दूसरे श्लोक को अमान्य किया है । जिससे सिद्ध होता है कि वर्तमान में प्रचलित हुआ देवनागरी वाचना का पाठ संक्षिप्त किया गया है ।।

*(ज)*इस संक्षिप्त किये गये पाठ में कुत्रचित् प्रक्षिप्त श्लोक भी घुस गये हैं ऐसा भी दिख रहा है । जैसे कि,(1) अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः । शक्यमरविन्दसुरभि0 – इस श्लोक से पूर्व में, दुष्यन्त का जो वाक्य चल रहा है कि, "...मालिनीतीरे ससखीजना शकुन्तला गमयति । तत्रैव तावद् गच्छामि ।" ठीक उसके बाद, कतिपय पाण्डुलिपियों में (एवं पं. श्री रेवाप्रसाद जी आदि के प्रकाशित संस्करणों में भी) निम्नोक्त श्लोक प्राप्त होता हैः- "*अनया बालपादपवीथ्या सुतनुरचिरंगतेति तर्कयामि । कुतः –*

संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशास्तयावचितपुष्पाः ।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः ।।"

इस श्लोक के द्वारा कहा गया है कि (=दुष्यन्त तर्क कर रहा है कि) वह सुतनु (शकुन्तला) इसी वृक्षवीथिका से चल कर अभी अभी गई होगी ऐसा लगता है । क्योंकि इन पौधों से पुष्पों का चयन किया गया है, तथा कुछ पौधे के पर्ण तोडने के कारण उनमें से निकल रहे दूध से उसके पर्ण स्निग्ध लग रहे हैं । यद्यपि रंगमंच पर मार्गान्तरण दिखाने के लिए, नायक के मुख से ऐसा श्लोक निकलना स्वाभाविक लगता है, तथापि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही होगा । क्योंकि जिस शकुन्तला ने प्रथमांक में आश्रम के वृक्षों के लिए ऐसा कहा हो कि मैं केवल पितृ-आज्ञा से जलसिंचन करती हूँ ऐसा नहीं है । मुझे भी इन वनस्पतिओं पर अपने सहोदर जैसा प्रेम है । (*अस्ति ममापि एतेषु सोदरस्नेहः* ।) एवमेव, चतुर्थांक में, काश्यप मुनि ने भी शकुन्तला की पहचान देते कहा है कि आज वह शकुन्तला ससुराल

जा रही है जो, "*पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्, युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्0*" (4-9) अपने को स्वसुशोभन पसंद होते हुए भी, जिस शकुन्तला ने वनस्पतिओं से कभी भी एक पल्लव भी तोडा नहीं है । इन कृतिनिष्ठ अन्तःप्रमाण से सिद्ध होता है कि उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त ही है ।।

(2) किसी भी कृति में कौन सा श्लोक प्रक्षिप्त होगा कि नहीं ? उसकी तर्कनिष्ठ परीक्षा करना बहुत आवश्यक है । जैसे उपर्युकत उदाहरण में कृतिनिष्ठ वचनों में ही आन्तर विरोध आ रहा है ऐसा दिखाया है, वैसा ही दूसरा उदाहरण षष्ठांक के प्रथम दृश्य में भी पडा है:- दो उद्यानपालिकाएँ वसन्त-ऋतु के आगमन पर चूतांकुर से कामदेवार्चन करती है । जिसमें द्वितीया उद्यानपालिका, जिसका नाम मधुकरिका है, वह कामदेव को उद्दिष्ट करके चूतांकुर फैंकती है । बस, उसी क्षण कञ्चुकी रंगमंच पर आकर इन दोनों को डाँटता है । और बताता है कि क्या आप जानती नहीं हो कि देव (दुष्यन्त) ने वसन्तोत्सव को निषिद्ध घोषित किया है । साथ में वह यह बात भी जोडता है कि वासन्तिक तरुओं ने और तदाश्रित पक्षिओं ने भी देव का शासन मान्य है । जिसके कारण –

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया ।
कण्ठेषु स्खलितं गतेSपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोSपि चकितस्तूर्णार्धकृष्टं शरम् ।। (6-4)

अर्थात् दुष्यन्त की आज्ञा को स्वीकारते हुए आम्रवृक्षों पर मञ्जरी का उद्गम नहीं हुआ है और आम्रवृक्ष पर रहेने वाले पुंस्कोकिलों ने भी अपने गले से कुहू कुहू जैसी आवाझ रोक दी है । प्रकृत श्लोक में ऐसा जो वर्णन प्राप्त होता है उसको सुनते ही साहित्यरसिकों के चित्त में आनन्द छा जाता है । लेकिन इस सुन्दर पद्य के आगे पीछे रखे गये वाक्यों को पुनः ध्यान से देखने से आन्तर-विरोध सामने आ जाता है । यहाँ इस पद्य का अवतार होने से पहले तो कहा गया है कि- "*महुअरिए, चूदकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परहुदिआ होदि । (मधुकरिके, चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति* ।)" इसका मतलब है कि चूतकलिका (आम्रमञ्जरी) का प्रसव हो चूका है । एवमेव, मधुकरिका ने यह भी कहा है कि अरे ! परभृतिके, मेरा अवलम्बन ले लो, मैं कामदेवार्चन करती हूँ । उसके बाद वह "*त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे0*" जैसी गाथा बोल कर कामदेव को एक चूताङ्कुर समर्पित भी करती है । यहाँ देवनागरी के पाठ में "*चूताङ्कुरं क्षिपति*" जैसी रंगसूचना भी दी गई है । इससे मालूम होता है कि चूतवृक्ष पर आम्रमञ्जरी का आगमन हो चूका था । अतः इतनी घटना घटित हो जाने के बाद, कञ्चुकी के मुख से उपर्युक्त रमणीय पद्य निकलना असमञ्जस सिद्ध होता है । दुष्यन्त की आज्ञा से निसर्ग में वसन्तागमन भी रुक गया है- इत्यादि कहना वह आन्तर विरोध से युक्त है । जिससे सिद्ध होता है कि यह रमणीय पद्य कालान्तर में प्रक्षिप्त किया गया है ।।

(झ) कवि कालिदास ने इस नाटक की प्रस्तावना में नटी के मुख से कहलाया है कि "णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउंदलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अधिकरीअदु त्ति । (ननु आर्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम अपूर्वं नाटकं प्रयोगे अधिक्रियतामिति ।)" उनका यह नाटक

अपूर्व है[5] । अर्थात् कालिदास ने अपने दो पुरोगामी नाटकों (मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय) से यह तीसरा नाटक अपूर्व है, भिन्न है । जिस तरह से पहले वाले दो नाटकों में पूर्वपरिणीता रानिओं (धारिणी-इरावती तथा काशीराजपुत्री औशिनरी) की ओर से राजा के नवीन प्रेम-प्रकरण में बाधाएँ डाली जाती हैं, उस तरह का संघर्ष इस अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में नहीं है । इस नाटक की यह एक अपूर्वता है । कालिदास के इस प्रतिज्ञा-वचन को यदि स्मरण-पट में रखेंगे तो, षष्ठांक के अन्त भाग में जब कहा जाता है कि अन्तःपुर की व्याघ्री (रानी वसुमती) आ रही है, अतः शकुन्तला के चित्र को जल्दी से छिपा दो । यहाँ राजा दुष्यन्त ने रानी को "बहुमानगर्विता" कही है और विदूषक ने भी राजा को कहा है कि आप (दुष्यन्त) जब अन्तःपुर के इस कालकूट से मुक्त हो जाय तब मुझे मेघप्रतिछन्द प्रासाद से वापस बुला लेना । - इन सभी सन्दर्भों का मौलिक होना असम्भव है । क्योंकि यहाँ तो, पूर्वपरिणीता रानी की ओर से पैदा होने वाले संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं है । इस तीसरे नाटक में तो कालिदास ने संघर्ष तत्त्व के रूप में दुर्वासा के शाप का विनियोग किया ही है, इस लिए दूसरे किसी घीसे-पीटे संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं रहती है । यही शाप-योजना इस नाटक की अपूर्वता है । अतः इस अपूर्वता को हानि पहुँचाने वाले षष्ठांक के पूर्वोक्त सन्दर्भ प्रक्षिप्त ही सिद्ध होते हैं ।।

(ञ) द्वितीयांक के अन्त भाग में, राजमाताओं ने करभक को भेजा है । उसने दुष्यन्त को संदेश कहा है कि आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति । तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया इति । इस पंक्ति में जिस व्रत का नामोल्लेख है वह है- प्रवृत्तपारणः । (आज से लेकर चौथे दिन जिस उपवास का पारणा शूरु होने वाला है) । यह पाठ अप्रतीतिकर है । क्योंकि प्रथमांक में कण्वाश्रम के मुनि ने आश्रम के मृग को नहीं मारने के लिए राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया है । जो अभिनवगुप्त के मत से इस नाटक का लक्ष्य है । अतः इस पुत्रप्राप्ति रूप लक्ष्य के विविध सन्दर्भ नाटक के सभी अंकों में बिखरे हुए हम पाते हैं । केवल द्वितीय अंक ही ऐसा है कि जिसमें इस लक्ष्य की ओर तनिक भी अंगुलिनिर्देश किया हो ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता है । (इस के स्थान में काश्मीरी-आदि अन्य वाचनाओं में इस व्रत का नाम पुत्रपिण्ड-पालन व्रत बताया गया है । इससे तात्पर्य यह निकलता है कि देवनागरी वाचना के अनेक पाठान्तर भी कृतिनिष्ठ आन्तरिक सम्भावनाओं से समर्थित नहीं होते हैं ।।

(ट) चतुर्थांक में पितृ-गृह से बिदाई लेकर ससुराल जा रही शकुन्तला अपने पिता कण्व से पूछती है कि – शकुन्तला – (पितरमाश्लिष्य) कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्ठा मलयतरून्मूलिआ चंदणलदा विअ देसंतरे जीविअं धारइस्सं । (कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलतेव

---

[5] इसी तरह से सूत्रधार के मुख से, कवि ने इस नाटक के लिए ("नवेन नाटकेनोपस्थातव्यम्" शब्दों से) "नवीन" विशेषण का प्रयोग किया है । तो उसका मर्म यह है कि मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटक में जैसे राजा का नवीन प्रियतमा के साथ का प्रेम-प्रसंग पूर्णतया एवं बहुशः नर्मसचिवायत्त (=विदूषक की बुद्धि के अधीन) बताया है, वैसा इस अभिज्ञानशाकुन्तल में नहीं है । यहाँ तो शकुन्तला के प्रेम-प्रसंग में विदूषक को सर्वथा अनुपस्थित ही रखा गया है । आदि से लेकर अन्त तक विदूषक को शकुन्तला के सामने लाया ही नहीं गया है । यह इस नाटक की नवीनता है ।।

देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये ।) यहाँ शकुन्तला ने अपने आपको "मलयपर्वत के तरुओं में से उन्मूलित की गई चन्दनलता" का उपमान दिया है । किन्तु यह उपमान भौगोलिक सत्य की दृष्टि से परीक्षा करने पर नितान्त गलत सिद्ध हो रहा है । जैसे कि, शकुन्तला का जन्म एवं संवर्धन जहाँ हुआ था, वह हिमालय की गोदी में, मालिनी नदी के तट पर था । लेकिन वहाँ (हिमालय के स्थान में) कहीं पर चन्दन के वृक्ष होते नहीं है । तथा वनस्पतिशास्त्र की जानकारी के अनुसार चन्दन के बडे वृक्ष होते है, कदापि चन्दन की लता नहीं होती है । इस दृष्टि से भी देवनागरी वाचना वाली पाण्डुलिपिओं में संचरित हुआ पाठ भारी मात्रा में प्रदूषित हुआ है वह निःशंक है ।। (यहाँ पर, अन्यान्य प्रमाण भी उपस्थित किये जा सकते हैं, लेकिन विस्तरभय से "इति दिङ्-न्याय" से, केवल अंगुलिनिर्देश करके, इस चर्चा को यहाँ विराम देते हैं ।)

निष्कर्षतः कहे तो, निदर्शतया प्रदर्शित किये गये इन दश आन्तरिक प्रमाणों से सुस्पष्टतया कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में पठन-पाठन में देवनागरी वाचना का जो लघुपाठ दृढासन लगा कर बैठ गया है, वह कालिदास का उत्कृष्ट नाट्यकार के रूप में परिचय देने वाला नहीं है ।।

[3]

अनुसन्धान के लिए किया हुआ क्षेत्रकार्य एवं सामग्री का एकत्रीकरण :-- (Field work and data collection) इस नाटक के लघुपाठ वाली देवनागरी वाचना की प्रकाशित सभी आवृत्तिओं में बहुविध मर्यादाएँ एवं विसंगतियों का परामर्श करने के बाद, इस नाटक के देवनागरी पाठ का परिवर्तन-इतिहास जानना अनिवार्य महेसुस होता है । दो हजार वर्ष पहले लिखा गया यह नाटक यथातथ रूप में हम तक पहुँचा होगा – ऐसा मानना केवल मुग्धता होगी । जिसके लिए अधिक से अधिक पाण्डुलिपियों के आधार पर एक अभिनव प्रयास करने का उपक्रम किया है । उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियाँ तीन सो – चार सो वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है । ऐसी परवर्ती काल में लिखी गई पाण्डुलिपियों के आधार पर मूल पाठ का सर्वांश में निर्धारण तो नहीं किया जा सकता है । किन्तु, कालचक्र के पाश में घिसाती पिटाती रही पाठपरम्परा की साक्षीभूत जितनी भी पाण्डुलिपियाँ अवशिष्ट रह गई हैं, उनका तर्क के सहारे विश्लेषण किया जा सकता है । जिससे "इस नाटक के देवनागरी पाठ का प्राचीनतम स्वरूप कैसा था, तथा उस में कैसे कैसे परिवर्तन होते रहे हैं ?" उस भूतकाल के अन्धकारग्रस्त पट पर कुछ प्रकाश तो अवश्य डाला जा सकता है । इस महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर न्यू केटलोगस केटलोरम्, मद्रास एवं राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मीशन, दिल्ली के डेटा-बेझ का पहला अभ्यास किया[6] । जिससे मालूम हुआ कि इस देश की शारदा, ग्रन्थ, मैथिली, बंगाली, तेलुगु, देवनागरी आदि अनेक पुरानी लिपिओं में लिखी गई सहस्र पर्यन्त पाण्डुलिपिओं में इस नाटक का पाठ (प्रतिलिपिकरण की परम्परा से) प्रवाहित होता रहा है । उनमें से केवल देवनागरी लिपि में ही लिखी गई शताधिक पाण्डुलिपियाँ अभी भी देश-विदेश के ग्रन्थभण्डारों में विद्यमान है । इस डेटा-बेझ में दी गई जानकारियाँ क्षतिग्रस्त एवं अपूर्ण भी मालूम हुई है । जैसे कि, इसमें राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के संग्रहालयों तथा विविध जैन ग्रन्थ भण्डारों की पाण्डुलिपियों का विवरण संलग्न नहीं किया गया है । एवं बिहार के भोजपुर, बेगुसराई आदि गाँवों में जिन वैयक्तिक संग्रहों में पाण्डुलिपियाँ होने का निर्देश है, वह बीलकुल श्रद्धेय

[6] द्रष्टव्य हैः- परिशिष्ट – 1,

नहीं है । हमने इन सब के साथ पत्राचार किया तो मालूम हुआ कि ऐसी कोई व्यक्ति वहाँ पर है ही नहीं । डाक-विभाग ने मेरे पत्र मेरे पास वापस भेज दिये ! (बिहार से एक भी पाण्डुलिपि नहीं प्राप्त हुई ।) तथापि निराश हुए बिना हमने यथासम्भव व्यापक अभियान उठाया । एशियाटिक सोसायटी, मुंबई, सरस्वती महल लाईब्रेरी, तंजावुर, गवर्न्मेन्ट मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, चेन्नै, मुंबई युनिवर्सिटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, बी. एल. इन्स्टीट्युट, दिल्ली, आलम इकबाल लाईब्रेरी, श्रीनगर, भुवनेश्वर स्टेट म्युझम, भाण्डारकर ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, पूणें, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, मैसुर, केराला में त्रिपुनितुरा, केराला युनि., त्रिवेन्द्रम्, तिरुपति आदि अनेक स्थानों में रु-ब-रु जा कर पाण्डुलिपियाँ एकत्र की गई । कतिपय ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनको उसके ग्रन्थभण्डार एवं संग्रहालयों में जाकर तथा इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली के कम्प्युटर-स्क्रिन पर बैठ कर साद्यन्त देखी हैं । कुछ स्थान पर मेरे शिष्य-शिष्याओं ने जाकर कतिपय पाण्डुलिपियाँ एकत्र की है । कुछ संस्थानों से सहृदय अध्यापक-मित्रों ने सहायता की है । कुछ पाण्डुलिपियाँ, जो वेब-साइट पर उपलब्ध होती थी, उनको डाउन-लोड करके संगृहीत कर ली है । जिसके फल स्वरूप जो 75 पाण्डुलिपियाँ की सामग्री एकत्र कर पाया हूँ, उसके आधार पर अभिनव समीक्षित पाठसम्पादन का कार्य किया है । इनमें से 62 पाण्डुलिपियाँ ऐसी है कि जिनमें इस नाटक का पूर्ण पाठ दिया गया है । किन्तु 13 पाण्डुलिपियाँ ऐसी है कि जिनमें इस नाटक की केवल प्राकृत-उक्तियों का संस्कृत-च्छाया-नुवाद (प्राकृतविवृति) ही दिया गया है । मैंने उनका भी संग्रह करके विश्लेषण किया है । प्रस्तुत अभ्यास में इस नाटक के केवल तीसरे अंक को निदर्श के रूप में लेकर विश्लेषण किया जायेगा । तथा अन्ततो गत्वा, इन 75 पाण्डुलिपियों में प्रतिबिम्बित हुए देवनागरी वाचना के (अद्यावधि अज्ञात रहे) प्राचीनतम पाठ में से क्रमशः आकारित हुए त्रिविध स्वरूपों का उद्घाटन किया जायेगा ।।

[4]

समीक्षणीय सामग्री (प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का विवरण) (Critical Apparatus):-- प्रस्तुत अभ्यास में कुल मिला कर पीचत्तर (75) देवनागरी पाण्डुलिपियों का विनियोग किया गया है । इन 75 पाण्डुलिपियों में से कतिपय ऐसी हैं कि जिनकी पेपर कॉपी मेरे पास है एवं बहुशः स्केन कॉपी या फोटो-कॉपी के रूप में संगृहीत की हैं । इन 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों का परीक्षण करते हुए आश्चर्य एवं आनन्दजनक जानकारियाँ मिली हैं । किन्तु उस दिशा में जाने से पहले, प्रस्तुत अनुसन्धान के लिए एकत्री की गई सभी पाण्डुलिपियाँ से सम्बद्ध एवं उनके कुछ बहिरंग परीक्षण से जुडी सूचनाएँ देना आवश्यक है । जैसे कि, पाण्डुलिपि कहाँ की है, किस क्रमांक से संगृहीत है, किस समय में लिखी गई है, कितने पृष्ठ है, पूर्ण है या अपूर्ण है ? इत्यादि ।

पाठभेदों का विश्लेषण करने पर इन पाण्डुलिपियों को चार यूथों में विभक्त की जा सकती है । अब, उन यूथों के क्रमानुसार पाण्डुलिपियों का परिचय निम्नोक्त हैः--

<u>प्रथम यूथ (क-1) में प्राप्त होनेवाली 5 पाण्डुलिपियों का विवरणः---</u>

[1] श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटण, (उत्तर गुजरात) की पाण्डुलिपि का क्रमांक सं. – 16630. (डिब्बा नं. 349 में जो सुरक्षित रखी है ।) हस्तलिखित प्रतियों की विवरणात्मक सूचि में इस पाण्डुलिपि के लिए "अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक टिप्पणी सह" ऐसा परिचय दिया गया है । किन्तु उसमें टिप्पणी के नाम पर, हांशिया में मूल की प्राकृत उक्तियों का बहुशः संस्कृत छायानुवाद दिया है । इस प्रति में 1 से 37 पृष्ठांकन किया गया है,

अतः उसमें कुल मिला कर 73 पन्ने समाविष्ट हैं । पुराने कागज पर लिखी गई यह प्रति करीब 400 वर्ष पुरानी है । क्योंकि उसके अन्तिम पंक्ति में लिखा है कि - *"समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकं ।। श्री ।। लेखकपाठयोः । ।। शुभं भवतु ।। कल्याणमस्तु ।। श्रीधर्म्मर्मूर्त्ति-सुरींद्रैर्विधि-पक्ष-गणे-न्दुभिः । गुणसौभाग्य-सूरिभ्यो दत्तेयं प्रीतये प्रतिः ।।"* इससे स्पष्ट होता है कि यह हस्तलिखित प्रति श्रीगुणसौभाग्य सूरि नाम के जैन साधु के लिए लिखी गई थी । यह गुणसौभाग्य सूरि का पहले नाम जयवन्त उपाध्याय था, जो प्राकृत "शृङ्गार-मञ्जरी" नामक काव्य के रचयिता है । तथा उन्होंने मम्मट के "काव्यप्रकाश" पर एक संस्कृत टीका भी लिखी थी । उनका समय विक्रम संवत 1614 है, अर्थात् ई. स. 1558 के आसपास में यह प्रति लिखी गई होगी । इसके आधार पर अनुमान होता है कि यह प्रति 400 वर्ष पुरानी है ।। (इस नाटक की उपलब्ध हो रही सभी देवनागरी पाण्डुलिपियों में यह प्रति सब से प्राचीनतम प्रतीत हो रही है । तथा उस प्रति के पाठ की धारा अन्य प्रतियों में संचरित हुई दिखाई पडती है । अतः इस प्रति का मूल्य सर्वाधिक है ।।)

इस प्रति में औ-कार, ऐ-कार एवं ए-कार की मात्राएं "अग्रमात्रा" के रूप में लिखी गई हैं । इस प्रकार की लेखन-शैली भी 13वीं से लेकर 16वीं शती तक के कालावधि में प्रचलित थी । इससे भी प्रस्तुत प्रति की प्राचीनता समर्थित हो जाती है ।।

इस प्राचीनतम प्रति की विशेषता है कि उसमें (क) प्राकृत उक्तियों में "य-श्रुति" का प्रभाव मिलता है । जैसे कि, इव → विय ।, नगरगमनस्य → णयर-गमणस्स ।, मुहूर्त्तकम् → मुहुत्तयं ।, सहकार → सहयार । एवमेव, (ख) क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां लोपः । सूत्रोक्त व्यंजनों का लोप प्रायः नहीं हुआ है । यानि मध्यवर्ती व्यंजन (दो स्वरों के बीच में आये हुए व्यंजन) जैसे कि क-ग-च आदि का लोप नहीं किया गया है । उदाहरणतया – मूषक → मूसक ।, नदीवेगस्य → नदीवेगस्स ।, हृदय → हियय । (महाराष्ट्री प्राकृत में तो मूसग या मूसअ, णईवेअस्स, हिअअ ऐसे रूप मिलते हैं ।) ।। [डॉ. दिलीपभाई पटेल, उत्तर गुजरात युनि., पाटण ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है ।]

[2] लालभाई दलपतभाई प्राच्यविद्या मन्दिर (एल. डी. इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी) अहमदावाद में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1948 है । इस पाण्डुलिपि में इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1750 बताया है । अर्थात् ई.स.1693 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठ 23 (यानि 46 पृष्ठ) समाविष्ट है । किन्तु उसमें 16 क्रमांक का पृष्ठ नहीं है, यानि कुल दो पृष्ठ नहीं है । इस अप्राप्य अंश में इस नाटक का षष्ठांक का प्रवेशक (जिसमें धीवर-प्रसंग आया है, उस)का पाठ्यांश है ।

इस पाण्डुलिपि की कुछ प्रमुख विशेताएँ इस तरह की है :-- (क) पाटण की 16630 क्रमांक की जो पाण्डुलिपि है उसकी प्रतिकृति रूप (डिट्टो कॉपी) यह पाण्डुलिपि प्रतीत होती है । क्योंकि दोनों में समान पाठ की धारा दिखाई देती है । तथा दोनों में अशुद्धियाँ भी एक समान है । (ख) प्राकृत उक्तियों में य-श्रुति का प्रचलन मिलता है । (ग) औ-कार, ओ-कार, एकार तथा ऐ-कार के लेखन में अग्रमात्रा (पडिमात्रा) का उपयोग किया गया है । स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ओ-कार का लेखनाकार प्राचीन काल का है । (घ) प्राकृत उक्तियाँ की संस्कृत छाया प्रायः नहीं दी गई है, कदाचित् कुत्रचित् एक-दो वाक्यों की छाया दी गई है । (ङ) इस प्रति के लेखक ने स-कार के

स्थान में श-कार, तथा ख-कार के स्थान में ष-कार का विनियोग किया है ।। [डॉ. जितेन्द्रभाई शाह, पूर्वनिदेशक, एल.डी.इन्डोलोजी ने यह पाण्डुलिपि की छाया प्रति प्रदान की है ।]

[3] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 21422 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1684 बताया है । अर्थात् ई. स. 1628 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 32 (यानि 64 पृष्ठ) समाविष्ट है । यह प्रति जोधपुर में ही लिखी गई थी ऐसा पुष्पिका के निम्नोक्त वाक्यों से मालूम होता हैः—*संवद्वेदवस्वर्त्वेन्दुप्रमिता आश्विन बलक्षराकादश्यां श्रीयोधपुरे । श्रीविमलोदयोपाध्यायमहेन्द्राणां शिष्यमुख्याः पं. श्रीमहिमनिधानाः । तच्छिष्येन पं.पुण्यनिधानेन चिरंजीवी उदयनिधान सुजाणसिंहादि सहाध्येनालेखि ।।*

(क) इस प्रति में संचरित हुआ पाठ पूर्वोक्त दोनों प्रतियों के पाठ के साथ बहुशः साम्य रखता है । (ख) लेकिन यहाँ प्राकृत उक्तियों में य-श्रुति का प्रचलन नहीं मिलता है । (ग) औ-कार, ओ-कार, एकार तथा ऐ-कार के लेखन में अग्रमात्रा (पडिमात्रा) का उपयोग किया गया है । एवं स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ओ-कार का लेखनाकार भी प्राचीन काल का है । (घ) प्राकृत उक्तियाँ की संस्कृत छाया प्रायः नहीं दी गई है, कदाचित् कुत्रचित् एक-दो वाक्यों की छाया हांशिया में दी गई है ।

[4] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 23590 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1700 बताया है । अर्थात् ई. स. 1644 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल मिला कर दो ग्रन्थ लिखे गये है । आरम्भ के 1 से 56 पृष्ठों में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक है, और तत्पश्चात् पृष्ठ 57 से 116 पृष्ठों में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का पाठ लिखा है ।

[5] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 28149 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1750 बताया है । अर्थात् ई.स.1693 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 23 (यानि 46 पृष्ठ) समाविष्ट है । किन्तु उसमें 16 क्रमांक का पृष्ठ नहीं है, यानि कुल दो पृष्ठ नहीं है । [जोधपुर से इन पाण्डुलिपियाँ ले आने का कार्य मेरे शिष्य डॉ. मनुभाई परमार, व्याख्याता, वडाली आर्ट्स कॉलेज ने किया है ।]

<u>द्वितीय यूथ (ख-1) में प्राप्त होनेवाली 6 पाण्डुलिपियों का विवरणः---</u>

[6] आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूणें, में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 52-517 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की इस पाण्डुलिपि का लेखन-काल विक्रम संवत 1881, अषाढ सुदी, सोमवार बताया है । अर्थात् ई. स.1825 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । उसके लेखक का नाम जोशी श्रीकृष्णात्मज हरि है । प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद इस के हांशियों में रखा है ।

(इसी आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूणें से एक प्रति ऐसी भी प्राप्त होती है कि जिसमें इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद ही दिया गया है । इस प्रति का क्रमांक एस.4(3) 52-519 है । इस प्रति की महत्ता इस बात में है कि इसमें इस नाटक के बृहत्पाठ में प्राप्त होने वाली प्राकृत-उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ! लेकिन इस विषय की चर्चा बाद में की जायेगी ।।)

[7] हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6654 है । (यह प्रति मूलतः वाडी पार्श्वनाथ का ग्रन्थभण्डार, पाटण की है ।) इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । किन्तु इस प्रति अपूर्ण है, जिसमें सातवें अंक का अन्तिम भाग नहीं है । कुल पृष्ठ 45 है । इसमें प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद नहीं दिया गया है । लेखक ने अग्रमात्रा का प्रयोग किया है, जिससे उसकी प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है । [डॉ. दिलीपभाई पटेल, उत्तर गुजरात युनि., पाटण ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है ।]

[8] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 39447 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का 16वीं शती लेखन-काल बताया गया है, परन्तु उसमें पुष्पिका नहीं है । तथा पञ्चम अंक के मध्य में ही पाठ पूरा हो जाता है । देवनागरी के बडे बडे अक्षरों में इस प्रति लिखी गई है । कुल पृष्ठ 40 सुरक्षित रहे हैं ।

[9] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7578 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । सातवा अंक अपूर्ण रहा है, क्योंकि उसमें भरतवाक्य का अभाव है । अतः पुष्पिका भी अनुपलब्ध है । तथापि उस प्रति में 145 पृष्ठ तो है ।

[10] भो. जे. अध्ययन संशोधन विद्याभवन, (गुजरात विद्यासभा), अहमदावाद में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6370 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस संग्रहालय की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूचि में इस प्रति का **लेखन-स्थान वृन्दावन** है । उसको ई.स.1765 में लिखी गई है । प्रतिलिपि-कर्ता ने पुष्पिका में लिखा है कि – *शुभमस्तु, संवत् 1921 मिति आश्वन वदि 6 बुधवार लिखतम्, श्रीवृन्दावनमध्ये पठनार्थ श्री गोस्वामि मनोहरवल्लभजी हस्ताक्षर-व्रजमोहन 0 0 ।।*

लोलिंबराजः खलु तीर्थराजे मुक्तिं प्रपेदे सुर-दुर्विभाव्याम् ।
जीवन्सदासीत्सकलाघकारीमृतः सा(?)नर्ब्रह्मवपुर्बभूव ।। 1 ।।
बंधनान्यपि बहूनि भवन्ति प्रेमतंतुकृत-बंधनमन्यत् ।
दारुभेदनरतोऽपि षडंघ्रिः पंकजस्य रागविबद्धः ।। 2 ।।

लेखन-काल विक्रम संवत 1921 बताया है । अर्थात् ई. स. 1865 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है । इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 1 से 47 समाविष्ट है ।।

[11] भारत-कला भवन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 87 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस प्रति में श्रीगणेशाय नमः । श्रीरामः शरणं मम । लिख कर मंगल किया है । परन्तु इस पाण्डुलिपि के अन्त में लेखक ने पुष्पिका नहीं दी है । अतः उसका लेखन-काल हम नहीं जान सकते हैं । यहाँ ध्यानास्पद बिन्दु यह है कि इसके प्रस्तावना भाग में नाटक

का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला" दिया गया है। (पाणडुलिपि के आरम्भ में कुल नव पृष्ठ किसी अन्य प्रति के जोड दिये गये हैं। उनके पीछे 114 पृष्ठों में नाटक पाठ लिखा है।) यहाँ प्राकृ उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद कहीं पर नहीं दिया गया है।

प्रथम यूथ (क-1) की वंशज-पाण्डुलिपियाँ, जिनमें लघुपाठ संचरित हुआ है और इस यूथ का उप-विभाजन (क-2) के सांकेतिक नाम से किया गया है। उसमें शामिल 15 पाण्डुलिपियों का विवरणः---

[12] लालचंद शोध पुस्तकालय, (लाहौर), डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5448 है। (इस पाण्डुलिपि को डी.ए.वी. कॉलेज, चण्डीगढ की वेब-साईट http://www.dav.splrarebooks.com/ पर से प्राप्त की गई है। इस संस्था के हम आभारी है, क्योंकि उन्होंने अपने संग्रह की सभी पाण्डुलिपियाँ निःशुल्क डाउन-लोडेबल बनाई है। यहाँ से मैंने इस नाटक की दो पाण्डुलिपियाँ Manuscript No. Record. 5623, & Manuscript no. 5448. प्राप्त की है।) इसमें इस नाटक का संक्षिप्तपाठ संचरित हुआ है। इस प्रति का लेखन-काल विक्रम संवत 1736 बताया है। अर्थात् ई. स. 1680 में इस पाण्डुलिपि की रचना हुई है। इस पाण्डुलिपि में कुल पृष्ठांक 63 (यानि 126 पृष्ठ) समाविष्ट है। उसमें काश्मीरी बृहत्पाठ का ही संक्षिप्तीकरण देखा जा रहा है। जिसमें 64 से 76 तक के पृष्ठ वेब-साईट पर उपलब्ध नहीं है।

इसके तृतीयांक में 26 श्लोकों वाला पाठ है। तथा इसमें "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है। तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादा-हता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है। [डॉ. कुलदीप धीमान ने इस पाण्डुलिपि की जानकारी उपलब्ध करवाई है।]

[13] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 193 है। मूतः प्रोफे. ब्युल्हर ने राजपुताना (**बिकानेरी**) से इस पाण्डुलिपि को ई.स. 1875 में प्राप्त की थी, लेकिन उस प्रति में उसका लेखन-काल ई स.1532 बताया गया है। प्रो. ब्युह्लर के अभिप्राय मुताबिक देवनागरी पाठ की यह प्राचीनतम पाण्डुलिपि है। लेकिन हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण की 16630 क्रमांक वाली पाण्डुलिपि ही सब से प्राचीनतम उपलब्ध पाण्डुलिपि है। जिसका लेखन-काल गुणसौभाग्य (जयवन्त सुरी) का काल, यानि ई.स.1457 निश्चित हुआ है। इस बिकानेरी पाण्डुलिपि वर्तमान में भाण्डारकर इन्स्टीट्युट में रखी गई है। हाँ, इतना जरूर उल्लेखनीय है कि देवनागरी वाचना के संक्षिप्त किये गये पाठ का प्राचीनतम पाठ इस बिकानेरी पाण्डुलिपि, क्रमांक 193 में, उपलब्ध है। तथा इसी देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ का प्राचीनतम पाठ पाटण की प्रति 16630 में उपलब्ध है।।

इस पाण्डुलिपि का अभ्यास डॉ. कार्ल बुरखाड ने 1881 में प्रकाशित किया है। द्रष्टव्य हैः—Lectiones codicis C'akuntali Bikanirensis, by Karl Burkhard, 1881, See : Achter Jahresbericht uber das K.K.Franz – Joseph, Gymnasium in Wie, 1881 / 82.

इसके तृतीयांक में 25 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[14] डेक्कन कॉलेज, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10948 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[15] भोगीलाल लहेरचंद इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी, दिल्ली में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 3964 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[16] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1322 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[17] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5133 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1635 है । इस प्रति के तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[18] महावीर दिगम्बर जैन संस्था, जयपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1223 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1793 है । इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।[डॉ. धर्मेन्द जैन ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है ।]

[19] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1224 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1791 है । इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है ।

[20] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5875 है । इसमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1803 है । इसके तृतीयांक में 30 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । तथा इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान भी प्रयुक्त किया गया है । [विक्रम युनिवर्सिटी के वर्तमान कुलपतिश्री डॉ. बालकृष्ण शर्मा जी के निर्देशन पर डॉ. शितांशु रथ ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है ।]

[21] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 49352 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1564 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[22] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 2851 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1773 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[23] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 15225 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1831 है । इसके तृतीयांक में 28 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । लेकिन इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।

[24] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1374 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 28 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । लेकिन इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।

[25] युनिवर्सिटी ओफ पेनसिल्वानिया, फिलाडेल्फिया, अमरिका में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 390-524 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 27 श्लोकों

वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य की प्राप्ति होती है । लेकिन इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है । [डॉ. देवेन पटेल, अमरिका ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है ।]

[26] डेक्कन कॉलेज, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10730 है । इसमें इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है । इसके तृतीयांक में 29 श्लोकों वाला पाठ है । तथा इसमें "लब्धोषध उपशमम् गमिष्यति" वाक्य में पाठभेद करके, "लब्धोत्सवा उपशमं गमिष्यति" ऐसे वाक्य की प्राप्ति होती है । एवमेव, इसमें शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने से पहले, उसके लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है । [डॉ. हेमन्त दवे, सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है ।]

प्रथम यूथ (ख-1) की वंशज-पाण्डुलिपियाँ, जिनमें लघुपाठ संचरित हुआ है और इस यूथ का उप-विभाजन (ख-2) के सांकेतिक नाम से किया गया है । वैसी 36 पाण्डुलिपियों का विवरणः---

[27] डेक्कन कॉलेज, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 10948 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1742 है । इस पाण्डुलिपि के अनुसार तृतीयांक में 32 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[28] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7294 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1724 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 31 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[29] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, कोटा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 7244 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 31 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[30] गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, (अण्णा सेन्टेनरी बिल्डींग) चेन्नै में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 12471 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 30 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[31] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 28027 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[32] चुनीलाल गांधी विद्याभवन (शास्त्री दिनमणिशंकर पुस्तक भण्डार में सुरक्षित) सूरत, (गुजरात) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 874 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1863 है । डॉ. धवल पटेल जी ने इस संस्थान की सभी पाण्डुलिपियाँ वेब-साईट पर फ्री डाउन-लोडेबल बनाई हैं, हम उनके आभारी हैं । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. धवल पटेल, आई.ए.एस. कलेक्टर सूरत ने यह पाण्डुलिपि वेब-साईट पर उपलब्ध करवाई है ।]

[33] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 45086 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1802 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[34] सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 2073 है । इस विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन लाईब्रेरी की पाण्डुलिपियाँ सुदुर्लभ होती हैं । अतः इसकी

स्केन-कॉपी देखने के लिए इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली के कम्प्युटर स्क्रिन पर बैठ कर पाठभेद प्राप्त किये गये हैं। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहृता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[35] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक एस(4) 52-514 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1841 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 29 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहृता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[36] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 16657 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहृता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[37] ईलाहाबाद राजकीय पुस्तकालय, अल्लापुर, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 127-324 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहृता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है।)

[38] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 9247 है। इस प्रति का लेखन-काल ई.स. 1634 है। इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है। इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति। शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं। (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों

में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[39] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 766-796 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 28 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)[यह प्रति डॉ. बी. एन. झा, जम्मू ने उपलब्ध करवाने में साहाय्य की है ।]

[40] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 409 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[41] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 4236 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1937 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[42] गंगानाथ शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 43427 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "*राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति* ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[43] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत इस पाण्डुलिपि का क्रमांक 423 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 27 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब

राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)[डॉ. देवीसिंह राठवा जी, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण ने इन्टरनेट से यह प्रति प्राप्त करके, मुझे पहुँचाई है ।]

[44] कोबा, गांधीनगर स्थित कैलाससागर महावीर जैन पुस्तकालय में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 9989 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[45] गंगानाथ झा शोध संस्थान, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 37377 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 26 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[46] ईलाहाबाद म्युझीयम, शहीद वीर चन्द्रशेखर आझाद पार्क, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 14193 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1728 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[47] होग्टन कॉलेज, हार्वर्ड युनिवर्सिटी, अमरिका में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1086 है । (यह प्रति डॉ. अञ्जनाबेन महेता ने हमें प्राप्त करवाई है ।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी"

का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. अञ्जनाबेन महेता, अहमदावाद ने यह प्रति प्राप्त करने में योगदान दिया है ।]

[48] कुरुक्षेत्र युनिवर्सिटी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) स्थित मेन्युस्क्रिप्ट कन्झर्वेशन सेन्टर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 51425 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [प्रोफे. श्री सुरेन्द्रमोहन मिश्र जी ने यह पाण्डुलिपि उपलब्ध करवाई है ।]

[49] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 422 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 25 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[50] अभय महावीर जैन ज्ञान मन्दिर, बीकानेर में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 13442 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[51] भारतीय विद्याभवन, चोपाटी, मुंबई में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 542 है । (डॉ. गिरिशभाई जानी ने यह प्रति उपलब्ध करवाई है ।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)[डॉ. गिरिशभाई जानी ने इस प्रति प्राप्त करवाने में सहयोग दिया है ।]

[52] नेपाल नेशनल आर्काईव्झ, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5-3299 है । (यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है ।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा

दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. कालिन्दी पाठक ने काठमण्डु जाकर, ये तीन पाण्डुलिपियाँ ले आकर सहयोग दिया है ।]

[53] नेपाल नेशनल आर्काईव्झ, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1-1696 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) ।(यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है ।)

[54] नेपाल नेशनल आर्काईव्झ, काठमण्डु, (नेपाल) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 15420 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1786 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) । (यह पाण्डुलिपि डॉ. कालिन्दी पाठक ने उपलब्ध करवाई है ।)

[55] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूर्णे में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक एस(4) 52-516 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) (यह प्रति डॉ. कमलेशभाई चोक्सी जी ने उपलब्ध करवाई है ।)

[56] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6765 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1830 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों

में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[57] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 5731 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1830 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[58] चिन्मय रिसर्च फाउन्डेशन, एर्णाकुलम्, (केराला) में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक पी.एम. 10 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) (यह पाण्डुलिपि डॉ. दिलीपकुमार राणा जी ने उपलब्ध करवाने में सहयोग दिया है ।)

[59] जम्मू रघुनाथ टेम्पल लाईब्रेरी, जम्मू में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 6341 है । इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।)

[60] राधनपुर विजयगच्छ जैनशाला ग्रन्थभण्डार, उत्तर गुजरात में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक (डाभडो. 53, प्रति)1783 है । इस प्रति का लेखन-काल ई.स.1757 है । (इस प्रति को सुलभ कराने का यश श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभण्डार, साबरमती, अमदावाद एवं डॉ. श्रीजितेन्द्र शाह जी को है ।) इस पाण्डुलिपि के तृतीयांक के पाठ में कुल मिला कर 24 श्लोक का समावेश हुआ है । इस पाण्डुलिपि के पाठ में, अनसूया जब राजा दुष्यन्त को बैठी हुई शकुन्तला के साथ में, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करने के लिए विज्ञप्ति करती है, तब वहाँ पर "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं एक साथ में दी गई हैं । (अर्थात् इस विभाग की सभी पाण्डुलिपियों में कहीं पर भी "लब्धोषध उपशमं गमिष्यति ।" या शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान प्रयुक्त नहीं किया गया है ।) [डॉ. जितेन्द्र शाह के सहयोग से यह प्रति प्राप्त हो सकी है ।]

[61] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 14189 है। यह प्रति अपूर्ण है, जिसमें तीसरे अंक का पाठ्यांश लुप्त है।

[62] लालचंद शोध पुस्तकालय, (लाहौर), डी. ए. वी. कॉलेज, चण्डीगढ में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 3676 है। यह पाण्डुलिपि वेब-साईट पर उपलब्ध है। यह प्रति अपूर्ण है एवं उसमें तीसरे अंक का पाठ्यांश लुप्त है।

<u>प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद जिनमें दिया गया है वैसी 13 पाण्डुलिपियाँ,</u>

[63] महावीर दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र, जयपुर में संगृहीत **अभिज्ञानशाकुन्तल प्राकृतांश टीका नामक** देवनागरी-लिपि-निबद्ध इस पाण्डुलिपि का क्रमांक 23986 है।

[64] भो. जे. विद्याभवन, अहमदावाद, गुजरात में संगृहीत **शाकुन्तल-बालावबोध** नामक इस प्राकृत-उक्तियों के संस्कृत च्छायानुवाद की पाण्डुलिपि का पाण्डुलिपि का क्रमांक 3136 है। जिसमें 28 फोलियो है। पत्र का परिमाण 23-5 x 12-5 है। उसका लेखन-काल शक संवत् 1775 है।

[65] आनन्दाश्रम शोध-संस्थान, पूणें में संगृहीत एक प्रति में इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद ही दिया गया है। इस प्रति का क्रमांक एस.4(3) 52-519 है। इस प्रति की महत्ता इस बात में है कि इसमें इस नाटक के बृहत्पाठ वाले पाठ का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है!

[66] मानसिंह पाण्डुलिपि पुस्तकालय, जोधपुर, में संगृहीत प्राकृत का छायानुवाद वाली प्रति का क्रमांक 929 है। जिसमें देवनागरी के लघुपाठ की प्राकृत-उक्तियों का संस्कृतानुवाद दिया है।

[67] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 472-1887-91 है। इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है।

[68] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 79-1907-15 है। इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है।

[69] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 523-1887-91 है। इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है।

[70] भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 200-1879-80 है। इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है।

[71] ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, एम. एस. युनि. ओफ बरोडा, वडोदरा में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 12594 है। इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है।

[72] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जयिनी में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 1189 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है । लेकिन उसको शाकुन्तल-टीका ऐसा नाम दिया गया है, जो बालह्मजिद् नामके व्याख्याकार ने लिखी है ।

[73] गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्युट, प्रयागराज में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 32861 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[74] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 53-521 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

[75] आनन्दाश्रम शोध संस्थान, पूणें में संगृहीत देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपि का क्रमांक 53-522 है । इसमें संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।।

इस तरह से यहाँ (क-1) यूथ में बृहत्पाठ वाली 5 पाण्डुलिपियाँ + (ख-1) यूथ में बृहत्पाठ वाली 6 पाण्डुलिपियाँ **+** (क-2) यूथ की संक्षिप्त पाठ वाली 13 पाण्डुलिपियाँ + (ख-2) यूथ की संक्षिप्ततर पाठवाली 38 पाण्डुलिपियाँ = 62 । उन 62 के साथ + प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद देने वाली 13 पाण्डुलिपियाँ मिला कर, कुल 75 पाण्डुलिपियों का योग होता है ।।

[4]

सहायक सामग्री (Testimonial) : एकत्र की गई इन पाण्डुलिपियों के लिपिकार ने पुष्पिकाओं में इनके लेखन-काल का निर्देश किया होता है । इसके आधार पर उन पाण्डुलिपियों की प्राचीनता या प्राचीनतरता की जानकारी हांसिल कर सकते हैं । लेकिन, लेखन-काल के आधार पर प्राचीनतर सिद्ध हो रही उन उन पाण्डुलिपिओं में जो पाठ परम्परया संचरित (प्रवाहित) होता रहा है, वह कितने पुरातन काल से चला आ रहा है ? वह जानने के लिए अलंकारशास्त्रादि के ग्रन्थों का "सहायक सामग्री" के रूप में विनियोग किया जाता है । प्रस्तुत अनुसन्धान में प्रमुखतया दो ग्रन्थों का विनियोग किया हैः – (1) भोजराज का शृङ्गारप्रकाश (ई.स.1050) एवं (2) हेमचन्द्राचार्य का सिद्धहेमशब्दानुशासनम् (ई.स.1172) । इन दो ग्रन्थों में अभिज्ञानशाकुन्तल के जो गद्य एवं पद्य वाक्यों के उद्धरण मिलते हैं, उनके आधार पर प्राप्त की गई इन पाण्डुलिपिओं में संचरित हुए पाठ की प्राचीनतमता निर्णीत की जायेगी ।।

[5]

प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का वंशवृक्ष (Steema codicum / Genealogical tree **) :--** अब हमें इन सभी पाण्डुलिपियों का पारस्परिक आनुवंशिक सम्बन्ध सोचना चाहिए । अर्थात् मूल ग्रन्थकार ने (स्वयं कवि कालिदास ने) अपने हाथ से इस नाट्यकृति का पाठ लिखा होगा, उस प्रथम पाण्डुलिपि में से सब से पहले किसी (नटमण्डली के सूत्रधार) ने कोई प्रतिलिपि तैयार की गई होगी । इस प्रथम प्रतिलिपि को आदर्श-प्रति के रूप में दृष्टि समक्ष रखते हुए, किसी अन्य लिपिकार ने दूसरी प्रतिलिपि बनाई होगी । इस तरह से, एक प्रतिलिपि में से दूसरी प्रतिलिपि बनाने के सिलसिले में, कालक्रम से बहुत सारी प्रतिलिपियाँ बनती रही होगी । जिनमें से बहुत सारी प्रतिलिपिभूत पाण्डुलिपियाँ कालग्रस्त भी होती चली होगी । हमारे लिए बच गई जो पाण्डुलिपियाँ हैं वे तो

केवल तीन सो चार सो वर्ष पहले लिखी गई पाण्डुलिपियाँ ही हैं और वे भी स्थानान्तरित होती रही होगी । आज जो देश के विभिन्न ग्रन्थभण्डारों में सुरक्षित की गई हैं । उनमें से हमने 75 पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की हैं । अतः हमारे लिए सब से पहले यह जानना आवश्यक है कि देश के विभिन्न स्थानों में बिखरी हुई इन पाण्डुलिपियों में कौन सी प्रति पूर्वज-प्रति है और कौन सी प्रतियाँ वंशज-प्रतियाँ है ? । प्राप्त की गई इन पाण्डुलिपियों के इस तरह के पारस्परिक आनुवंशिक सम्बन्ध को अनुमान से ढूँढना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने से ही प्राचीन से प्राचीनतर, और प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ किस पाण्डुलिपि में सुरक्षित रहा है ? उसका निर्णय किया जा सकता है । पाठालोचक का यह कर्तव्य है कि वह पहले प्राचीनतम पाठ किस पाण्डुलिपि में सुरक्षित है- वह खोज निकाले । तत्पश्चात् उस प्राचीनतम पाठ में से, कैसे कैसे परिवर्तन होते होते अनुगामी काल के प्राचीनतर, प्राचीन एवं अर्वाचीन पाठ बनते गये है ? वह भी प्रदर्शित करे । ऐसा होने पर ही इस नाट्यकृति की पाठयात्रा स्पष्ट होगी ।

लेकिन, प्राप्त की गई इन पाण्डुलिपियों का पारस्परिक आनुवंशिक सम्बन्ध खोजने के लिए जो प्रविधि है वह इन पाण्डुलिपियों में प्राप्त हो रहे साम्य एवं वैषम्य का अभ्यास करने की है । जिसके लिए पहले संतुलन-पत्रिकाएँ बनानी आवश्यक है । हमने इस अनुसन्धान कार्य में कागज पर संतुलन-पत्रिकाएँ नहीं बनाई है । उस पुरातन पद्धति को छोड कर, हमने कम्प्युटर की एक्सेल-शीट का विनियोग किया है । आधुनिक काल की इस नवीन सुविधा का उपयोग करने में एकाधिक फायदे हैं । जैसे कि, 1. एक्सेल-शील में लाखों की संख्या में स्तम्भ (कोलम) एवं पंक्तियाँ उपलब्ध होने से असीम डाटा संपूरित किया जा सकता है । 2. उसमें रखा गया डाटा सोर्टिंग-फिल्टरिंग की सुविधा से विश्लेषित करने में बहुत सौकर्य रहता है । 3. भविष्य में नवीन पाण्डुलिपियाँ मिलने पर, भूतकालिक डाटा को पुनः पुनः अप-डेट भी किया जा सकता है । एक्सेल-शीट में बनाई हमारी संतुलन-पत्रिका का एक निदर्श परिशिष्ट – 3 में रखा गया है । अस्तु ।।

एक्सेल-शीट में बनाई गई संतुलन-पत्रिका में प्रदर्शित हो रहे पाठभेदों के साम्य एवं वैषम्य के डाटा के आधार पर निम्नोक्त जानकारियाँ प्राप्त हुई हैः- इन 75 पाण्डुलिपियों में से कुल एकादश पाण्डुलिपियाँ ऐसी हैं कि जिनमें इस नाटक का **बृहत्पाठ** संचरित हुआ है । इन एकादश पाण्डुलिपियों के तृतीयांक का निदर्शनभूत तुलनात्मक अध्ययन करने से मालूम होता है कि 1. इनमें 42 श्लोकों वाला पाठ विद्यमान है । एवं 2. कतिपय पाण्डुलिपियों में राजा दुष्यन्त तीन सहेलियों के सामने उपस्थित होने पर, रंगमंच पर लेटी हुई शकुन्तला को लज्जा सहित खडी करने के लिए मंचनलक्ष्यी द्विविध योजनाएँ आविष्कृत की गई है । जैसे कि, (क) शकुन्तला अपने हाथ में रहे कमलपुष्प के पत्रों की गणना करती हुई लज्जा सहित खडी रहती है । (ख) शकुन्तला को लज्जा सहित खडी करने के लिए "*लब्धोषध उपशमं गमिष्यति*" जैसे वाक्य का विनियोग करने के साथ साथ, कुछ प्रतियों में शकुन्तला को *मेघनादाहता मयूरी* का उपमान देकर, खडी होती हुई दिखाई गई है । (ग) तो कुछ अन्य पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी है कि जिनमें इस तरह के वाक्यों का विनियोग नहीं किया गया है । इनमें तो, जैसे ही राजा को शकुन्तला के साथ में बैठने के लिए विज्ञप्ति की जाती है, उसी क्षण शकुन्तला को "*सलज्जं तिष्ठति*" रंगसूचना से, तुरन्त ही खडी की जाती है । इस तरह के पाठभेदों का सीधा सम्बन्ध इस प्रणय-दृश्य के अभिनयन (मंचन) के साथ है । अतः इस तरह के वाक्य का होना या नहीं होना – इस महत्त्वपूर्ण पाठभेद को भेदक बिन्दु बनाना चाहिए । एवमेव, प्रथम यूथ की पाण्डुलिपियों के प्रतिपक्ष में जो दूसरे यूथ की पाण्डुलिपियाँ हैं, उनमें अंशतः संक्षेपीकरण का प्रारम्भ भी हुआ है (अथवा उनमें कम प्रक्षेप हुए हैं)- ऐसा दिखाई रहा है । जिसके कारण प्रथम यूथ की पाण्डुलिपियों में,

इस नाटक के तीसरे अंक में 42 या 41 श्लोक उपलब्ध होते हैं, किन्तु दूसरे यूथ की पाण्डुलिपियों में क्रमशः श्लोकसंख्या कम होती चली है। इसी सिलसिले में, अन्त में जाकर 24 श्लोक वाला तृतीयांक भी प्राप्त होता हैं। अब इन भेदक-बिन्दुओं के आधार पर, बृहत्पाठ वाली एकादश पाण्डुलिपियों का सब से पहले "क-1" एवं "ख-1" नामक दो यूथों में विभाजन किया जा सकता हैः—

(1) क-1 यूथ में 1. पाटण की 16630 प्रति, 2. अमदावाद की 1948 प्रति, 3. जोधपुर की 21422 प्रति, 4. जोधपुर की 23590 प्रति, एवं 5. जोधपुर की 28149 प्रति का समावेश होता है। इस यूथ में कुल पाँच पाण्डुलिपियाँ आती हैं। (केवल इन पाँच पाण्डुलिपियों में शकुन्तला के लज्जा भाव को वर्णित करते हुए दुष्यन्त ने एक श्लोक बोला है। जिसमें शकुन्तला ने अपने हाथ में रखे कमल के पत्रों को गिनने की अभिनय किया है।)

(2) दूसरे, ख-1 यूथ में अन्य छह प्रतियों का समावेश होता हैः- जैसे कि, 1. 6. आनन्दाश्रम की 52-517 प्रति, 2. पाटण की 6654 प्रति, 3. जोधपुर की 39447 प्रति, 4. भरतपुर की 7578 प्रति, 5. बी. एच. यु. वाराणसी की 87 प्रति एवं 6. वृन्दावन में लिखित तथा अहमदावाद में संगृहीत 6370 क्रमांक वाली प्रति का समावेश होता है।

यद्यपि इन एकादश पाण्डुलिपिओं के पूर्वोक्त भेदक बिन्दु को छोड कर अन्य पाठ्यांश में प्रायः साम्य मिलता है। अतः इन एकादश प्रतियों को "समान-वंशज" प्रतियाँ कही जा सकती है। किन्तु प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों के पाठों (की संतुलन-पत्रिकाओं) में जहाँ जहाँ समान अशुद्धियाँ, समान त्रुटितांश एवं समान अधिक पाठ्यांशों की प्राप्ति होती है, उसके आधार पर उन उन पाण्डुलिपियों को "समान-आदर्शप्रति" वाली प्रतियाँ मानी जाती है। यानि उन सभी पाण्डुलिपियों का प्रतिलिपिकरण कोई एक समान पूर्वज-प्रति को आदर्शप्रति बना कर हुआ होगा। इस दृष्टि से सोचा जाय तो, (मूल महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में नायक का नाम "दुःषन्त" मिलता है। किन्तु) इस नाटक के पाठ में तो नायक का नाम सामान्यतया "दुष्यन्त" प्रचलित है। कालिदास ने इस नाटक के अनेक स्थानों में दुष्यन्त शब्द का विनियोग किया है। जैसे कि, (1) तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः। एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ।। (अंक-1, श्लो. 5), (2) तृतीयांक के आरम्भ में ही, "शिष्यः – अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः ।", (3) चतुर्थांक में, दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः। अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ।। (श्लो.- 4), (4) पञ्चमांक में, श्लोक 23 के नीचे, "भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम् ।तथापीदं न दृश्यते ।", (5) षष्ठांक में, राजा की उक्तिः- "किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना । स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् । (6-23)" । अब इन एकादश देवनागरी पाण्डुलिपियों की संतुलन-पत्रिकाएं देखने से मालूम होता है कि उनमें से, कुल पाँच पाण्डुलिपियों में "दुष्कन्तः" ऐसा नाम मिलता है। (जैसे कि, 1. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण की 16630, 2. एल. डी. इन्डोलोजी, अहमदावाद की 1948, 3. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की 21422, 4. राजस्थान प्राच्यविद्या

प्रतिष्ठान, जोधपुर की 28149 एवं 5. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर की 7578) यहाँ इन पाँचों में जो समान अशुद्ध वर्तनी "दुष्कंतः" मिलती है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन पाँच प्रतियों की "आदर्श-प्रति" के रूप में कोई एक समान पूर्वज-प्रति ही रही होगी ।।

पाठ्यांश के सन्दर्भ में, इन दोनों यूथों में दृष्टिगोचर होने वाले मुख्य साम्य के बिन्दु निम्नोक्त हैः—इन दोनों में इस नाटक का बृहत्पाठ सुरक्षिततया संचरित हुआ है । इस बृहत्पाठ में, 1. दुष्यन्त शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाता है, और 2. पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त प्रमार्जित कर देता है – ऐसे दो दृश्यों का समावेश किया गया है । जिसके कारण इस देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ का कलेवर भी यहाँ 42 से 38 श्लोकों वाला प्राप्त होता है । यद्यपि ऐसा बृहत्पाठ तो अन्यत्र काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों में भी होता है । तथापि देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ की अपनी कुछ अस्मिताएं भी स्पष्टतया उद्भासित हो रही हैं । जैसे कि, (क) उपर्युक्त दो विशेष दृश्यों को 1. "अपरिक्षतकोमलस्य यावत् गृह्यते रसोस्य0" तथा 2. "इदमुपकृतिमबले तव मुखं मया यदाघ्रातम्0" इन दो श्लोकों के बीच में संपुटीकृत करके रखे गये हैं । (इस तरह की दृश्य-योजना काश्मीरी, मैथिली एवं + बंगाली वाचनाओं के पाठ में प्राप्त नहीं होती है ।) एवमेव, (ख) तीन नवीन श्लोकों का क्षेपक प्राप्त होता है । जिनमें 1. *एते सद्यः प्रचितकुसुमा0*, 2. *न केवलं रूपेण बाला0* तथा 3. *प्रभुत्वमेव0* श्लोक ध्यानास्पद है । (क्योंकि ये तीन श्लोक भी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली जैसी तीनों वाचनाओं में कहीं पर भी नहीं मिलते हैं ।) अतः इन एकादश पाण्डुलिपियों की "मूलादर्श-प्रति" तो कोई एक समान ही होगी । (अतः इन एकादश प्रतियों को "समान-वंशज प्रतियाँ" कही जायेगी । उस मूलादर्श-प्रति का पाठ हमारे लिए अनुमान-गम्य होगा । उस मूलादर्श-प्रति के अनुमानगम्य बृहत्पाठ को हमने "समीक्षित पाठ" के रूप में तैयार करने का उपक्रम किया है ।।)[इन 75 पाण्डुलिपियों के पाठभेदों को परिशिष्ट 2 से 4 में रखे हैं ।]

इन (पूर्वोक्त) दो प्रधान यूथों की पृथक्-पृथक् वंशज प्रतियाँ बनाने का प्रघात भी कालान्तर में शूरु हुआ होगा ऐसा दिखता है । किन्तु, उन (एकादश) में प्रवाहित हुआ वह बृहत्पाठ बाद में यथावत् सुरक्षित नहीं रहा है । अब तो, उस पूर्वोक्त परम्परागत बृहत्पाठ के कुछ स्थानों में श्लोक-क्रमादि में परिवर्तनादि किये गये हैं एवं उनमें से दो दृश्यों की कटौती भी की गई है । इस संक्षेपीकरण के बाद जो आकारित हुआ "लघुपाठ" है, वह बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों में मिलता है । पृथक्तया आकारित हुए इस लघुपाठ वाली 53 पाण्डुलिपियों का हम (क-2) तथा (ख-2) जैसे दो उपविभागों में बटवारा करेंगे । इन दो उप-विभागों में से, (क-2) में प्राप्त होनेवाली प्रतियों की संख्या 15 है, तथा दूसरे (ख-2) विभाग में 36 प्रतियाँ हैं । इन प्रतियों के अलावा हमने 13 पाण्डुलिपियाँ ऐसी प्राप्त की है कि जिनमें इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद दिया गया है ।

इस तरह से बृहत्पाठ वाली (क-1) यूथ की 5 + (ख-1) यूथ की 6, + लघुपाठ वाली (क-2) यूथ की 15 + लघुपाठ वाली (ख-2) यूथ की 36 + प्राकृतविवृति या प्राकृतच्छायानुवाद वाली 13 = 75 पाण्डुलिपियों का योग होता है । अब, उपर्युक्त विभाजन के अनुसार इन सभी 75 पाण्डुलिपियों का वंशवृक्ष दिया जायेगाः--

कालिदास-प्रणीत मूल पाठ (जो कालग्रस्त हुआ है)

↓

(इस में अलग अलग प्रान्तों में आकारित हुई पाँच वाचनाएँ । 1. काश्मीरी, 2. मैथिली, 3. बंगाली,

4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी लिपि में लिखी गई पाण्डुलिपियों में संचरित पाँच वाचनाएँ ।)

↓

पुरोगामिनी काश्मीरी-मैथिली-बंगाली जैसी तीन वाचनाओं के पाठों में से कतिपय पाठभेदों का

आहरण करने के साथ, नवीन पाठ-योजना वाला

देवनागरी वाचना का संमिश्रित बृहत्पाठ ।

(अनुमानगम्य मूलादर्श-प्रति)

↓

उपलब्ध देवनागरी वाचना का प्राचीनतम बृहत्पाठ

(जिसकी प्रतिनिधिभूत 11 पाण्डुलिपियाँ)

↓

उपर्युक्त बृहत्पाठ का दो यूथों में बटवारा

↓

(क-1) यूथ की पाण्डुलिपियाँ

[जिसमें 1 से 5 क्रमांक की प्रतियाँ]

↓

(क-2) के यूथ की संक्षिप्त पाठवाली 15 प्रतियाँ

[इसमें 12 से 26 क्रमांक की पाण्डुलिपियाँ]

(ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियाँ

[जिसमें 6 से 11 क्रमांक की प्रतियाँ]

↓

(ख-2) यूथ की संक्षिप्ततर पाठ की 38 प्रतियाँ

[इसमें 27 से 62 क्रमांक की पाण्डुलिपियाँ]

[6]

उपर्युक्त वंशवृक्ष को निर्धारित करने में हेतुभूत परामर्शः (Logic behind the proposed genealogical tree) प्राप्त की गई कुल पीचत्तर पाण्डुलिपियाँ देवनागरी लिपि में ही लिखित है, तथापि उनमें इस नाटक का कोई मूलगामी विशुद्ध पाठ नहीं है । कहने का तात्पर्य ऐसा है कि कवि कालिदास के समय में तो ब्राह्मी-लिपि का प्रचलन था । उस ब्राह्मीलिपि-निबद्ध मूलपाठ की धारा से ही निकली हो ऐसी परिशुद्ध देवनागरी वाचना का यह पाठ नहीं है । मैंने इस नाटक की काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ सम्पादित किया है, जिसका प्रकाशन राष्ट्रिय

संस्कृत संस्थान, दिल्ली (2018) से हुआ है । उसकी प्रस्तावना में मैंने इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के प्रादुर्भाव का पौर्वापर्य निर्धारित किया है । उस परामर्श के अनुसार पहले काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ क्रमशः आविर्भूत हुए थे । तथा वर्तमान देवनागरी वाचना के पाठ का आविर्भाव चौथे (या पाँचवे) क्रम पर हुआ होगा । काश्मीरी-आदि तीन वाचनाओं के बाद ही वर्तमान देवनागरी वाचना निकली है- ऐसा मानने का कारण यह है कि इस देवनागरी पाठ में काश्मीरी -आदि तीनों वाचनाओं के पाठान्तरों का अनेकत्र समाहरण किया गया है । उदाहरणतया, तृतीयांक के आरम्भ में दुष्यन्त की कामयमाना-वस्था को प्रदर्शित करने वाले तीन श्लोक (1. अद्यापि नूनं हरकोपवह्निना0, 2. वृथैव संकल्पशतैः0, 3. संमीलन्ति न तावद्बन्धनकोशाः0) मैथिली वाचना से लिए गये है । ये तीन श्लोक पहले काश्मीरी वाचना में नहीं थे । तथा यहीं पर जो शशिकरविशदानि0 वाला श्लोक है वह बंगाली वाचना में से लिया गया है । यह श्लोक इस बंगाली वाचना से पहले काश्मीरी एवं मैथिली में नहीं मिलता था । उसी तरह से गद्य वाक्यों का समाहरण भी दिखाया जा सकता हैः- दुष्यन्त ने प्रियंवदा-अनसूया को "चित्रा-विशाखे शशांकलेखामनुवर्तते" कहा है, जो वाक्य मूलतः काश्मीरी वाचना में से देवनागरी वाचना में लाया गया है । तथा शकुन्तला के लिए "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति" ऐसा जो कहा है, और उसके लिए (देवनागरी की कतिपय पाण्डुलिपियों में) मेघनादाहता मयूरी-का उपमान रखा गया है, वह काश्मीरी वाचना में से लिया गया है । इन उदाहरणों से इस देवनागरी वाचना का पाठ संमिश्रित किया गया पाठ है ऐसा सिद्ध हो रहा है । किन्तु यहाँ अनतिचिरेण यह कहना भी बहुत अनिवार्य है कि मैंने एकत्र की इन 75 पाण्डुलिपिओं में देवनागरी वाचना का जो पाठ है वह संमिश्रित पाठ होने के साथ साथ, अपनी कुछ निजी विशेषताएँ भी रखता है । देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उपर्युक्त दोनों दृश्यों को (क) *अपरिक्षतकोमलस्य यावत्0* एवं (ख) *इदमुपकृतिमबले सुरभि मुखं* 0 जैसे दो श्लोकों के बीच में रखे गये हैं । इस तरह की पाठ-योजना काश्मीरी-मैथिली-बंगाली वाचनाओं के बृहत्पाठ में नहीं मिलती है । बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि उन तीन पुरोगामिनी वाचनाओं के पाठों में *अपरिक्षतकोमलस्य*0 श्लोक मिलता ही नहीं है ।।

देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें तीन नवीन श्लोकों का प्रक्षेप प्राप्त हो रहा है**,** जो पुरोगामिनी तीन (काश्मीरी-मैथिली-बंगाली) वाचनाओं में कहीं पर मिलते नहीं हैं । ये श्लोक हैं :- (1) *एते सद्यः प्रचितकुसमा रिक्तकोशा0*- श्लो.-6, (2) *न केवलं रूपेण बाला व्रीडिता0*- श्लोक.21**,** तथा (3*) प्रभुत्वम् एवास्खलिताभितापम्*0- श्लो.22 । इन तीन श्लोकों की प्राप्ति बृहत्पाठ वाली 11 पाण्डुलिपियों में से मुख्यतया प्रथम (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में होती है । ये श्लोक कुत्रचित् (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी मिलते हैं ।

*** *** *** *** *** *** *** ***

बृहत्पाठ वाली 11 देवनागरी पाण्डुलिपियों का भेदक तत्त्व भी ध्यातव्य है :- (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में राजा ने जब शकुन्तला की संतप्तावस्था के बारे में प्रश्न पूछा तब सहेलियों ने "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" ऐसा कहा है, और उसके बाद "सलज्जं तिष्ठति" रंगसूचना से शकुन्तला खडी हो जाती है । एवं राजा ने उसके लज्जा के भावों का आलेखन करने के लिए एक श्लोक भी प्रस्तुत किया है । तथा, उस समय पास में खडी शकुन्तला अपने हाथ में रहे कमलपुष्प के पत्रों का परिगणन करने का अभिनय करती है । (इस दृश्य में, कुमारसम्भव के षष्ठ सर्ग की पंक्ति " एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी । लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती" (6-84) का प्रतिध्वनि सुनाई पडता है ।)

किन्तु (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" जैसा वाक्य नहीं है । इन 6 पाण्डुलिपियों में तो राजा ने जैसा ही शकुन्तला के साथ उसी शिलातल पर आसन ग्रहण किया, वैसे ही सीधी दो रंगसूचनाएँ दी गई हैं कि "*राजा उपविशति । सलज्जं तिष्ठति ।*" अर्थात् इस (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में शकुन्तला की लज्जा को किसी श्लोक एवं किसी दृश्य-विशेष के साथ, अभिनय के माध्यम से, प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

*** *** *** ***

देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ में संक्षेपीकरण करके कालान्तर में दो तरह के संक्षिप्त पाठ बने हैं- ऐसा प्रतीत होता है । यद्यपि इन दोनों संक्षिप्त पाठ भिन्न भिन्न वंशों में से आकारित किये गये है । जैसे कि, (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षेप करके (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ बनाई गई है । (इस यूथ में 12 से 26 क्रमांक की पाण्डुलिपियों का परिगणन किया गया है ।) तथा (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षेप करके (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ बनाई गई है । (जिसमें 27 से 62 क्रमांक की पाण्डुलिपियों का परिगणन किया गया है ।) क्योंकि जिस तरह से (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य है, उसी तरह का वाक्य इन (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी उपलब्ध होता है । इससे सिद्ध होता है कि (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों के वंश की है । (यहाँ एक विशेष बिन्दु जोडना आवश्यक है कि इस यूथ की 12 से 22 क्रमांक वाली पाण्डुलिपियों में न केवल "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य ही है, किन्तु इन में शकुन्तला के लिए "मेघनादाहता मयूरी" का उपमानवाक्य भी अधिकतया दाखिल हुआ प्राप्त होता है ।) एवमेव**,** जिस तरह से (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में "*लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति*" वाक्य नहीं मिलता है, उसी तरह से इन (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में भी वह वाक्य नहीं मिलता है । इससे सिद्ध होता है कि (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियाँ (ख-1) यूथ की पाण्डुलिपियों के वंश में पैदा हुई है ।

इन दो (क-2) एवं (ख-2) उप-विभागों की पाण्डुलिपियों में संक्षिप्त पाठ मिलता है यह एक हकीकत है । क्योंकि इन दोनों में (1) दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाने का प्रसंग**,** एवं (2) पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र का दुष्यन्त के द्वारा प्रमार्जन करने का प्रसंग**,** इन दोनों को हटाये गये हैं । लेकिन इन दो संक्षिप्त किये गये पाठों में एक अन्तर्निहित भेद भी है**,** जो ध्यातव्य है । जैसे कि**,** (क-2) यूथ की संक्षिप्त पाठ वाली पाण्डुलिपियों में तृतीयांक के आरम्भ में दुष्यन्त के द्वारा कामयमानावस्था का अभिनय करने के लिए जिन श्लोकों को रखे गये है**,** उनमें प्रायः कटौती नहीं की गई है । परन्तु (ख-2) यूथ की पाणडुलिपियों में उस कामयमाना-वस्था का अभिनय करने में उपकारक सिद्ध होने वाले श्लोकों को भी हटाने की प्रणालि शूरु हुई है । जिसके कारण (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों के तृतीयांक में 31 से 28 श्लोकों वाला कलेवर मिलता है । तथा (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में वह श्लोक-संख्या कम होते होते अन्त में 23 या 24 पर जा कर रुकती है । इस तरह से (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में देवनागरी वाचना का संक्षिप्ततर पाठ उपलब्ध होता है । बस, यही अन्तिम चरण पर आये हुए संक्षिप्ततर पाठ को आज हमने पठन-पाठन में स्वीकार लिया है ।।

इस तरह से देवनागरी वाचना के बृहत्पाठ में से पहले तृतीयांक के उपरि निर्दिष्ट प्रेमसहचार के दो दृश्यों को हटाये गये (जिसके बाद आकारित हुआ (क-2) पाण्डुलिपियों का संक्षिप्त पाठ) । तत्पश्चात् दूसरे स्तर पर, तृतीयांक के आरम्भ में कामयमानावस्था के अभिनयन में उपकारक होने वाले श्लोकों की कटौती की गई । तथा शकुन्तला को भी अस्वाभाविक रूप से क्षणार्ध में (बिजली के झटके की तरह) खडी की जाती है । इस तरह से (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों मे प्रवाहित हुआ पाठ आकारित हुआ है । इन (क-2) एवं (ख-2) की पाण्डुलिपियों

में जो दो तरह की कटौती हुई है, और उसके बाद जो अवशिष्ट रह गया संक्षिप्ततर पाठ है, उसमें शकुन्तला का प्रेम केवल सखीयों के अधीन ही हो गया है- ऐसी परिस्थिति का निर्माण हुआ है । जिसमें प्रेम की कोई सुन्दरता न रही, न रही कोई प्रेम की गरिमा ।।

[7]

कुसुमशयना शकुन्तला के स्थित्यन्तर :-- (Various changes in the sleeping position of the heroin, Shakuntala) कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के तृतीयांक में नायक एवं नायिका का गान्धर्व-विवाह निरूपित किया गया है । किन्तु दो हजार वर्षों की कालावधि में इस अंक के पाठ्यांश में बहुविध परिवर्तन आये है । तथा अज्ञात नटमण्डलियों ने भी इसमें बार बार मंचनलक्ष्यी रंगसूचनाओं में तोड-जोड की है । इन मंचनलक्ष्यी परिवर्तनों की परम्परा को जानने से पहले, उपर्युक्त गान्धर्व-विवाह की पूर्वभूमिका के रूप में रखे गये "कुसुमशयना शकुन्तला" के दृश्य की मूल में कवि-संकल्पित मंचन-योजना क्या रही होगी ? वह विचारणीय है । क्योंकि इस कवि-संकल्पित दृश्य-योजना को जाने बिना, परवर्ती काल में आविर्भूत हुई परिवर्तन-यात्रा हमारी पकड में नहीं आयेगी । अतः कुसुमशयना शकुन्तला के दृश्य का मंचन मूल में कैसे करना अपेक्षित था ? वह सब से पहले अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर सोचेंगे । यहाँ आरम्भ में ही कहा गया है कि नायिका शकुन्तला मदनदाह-पीडिता है । सखी प्रियंवदा उसके शरीरदाह के निर्वापण (=शीतलता प्रदान करने) के लिए उशीरानुलेपन ले जा रही है । कण्व मुनि का शिष्य भी बताता है कि बडी सावधानी से शकुन्तला की शुश्रूषा करनी चाहिए, क्योंकि वह कण्व मुनि के उच्छ्वास रूप है । इस दृश्य का आरम्भ मध्याह्न वेला में हुआ है । एक ओर राजा दुष्यन्त कामयमानावस्था का अभिनय करता हुआ रंगमंच पर आता है । तो दूसरी ओर, रंगमंच पर कुसुमास्तरण वाले शिलापट्ट पर लेटी हुई शकुन्तला का प्रवेश होता है । दोनों सहेलिया उसके दहिने-बायें बैठी है और लेटी हुई शकुन्तला को नलिनी-दल से पवन झल रही है । किन्तु शकुन्तला को आसपास की परिस्थिति का कुछ भान नहीं है । जिसको देख कर प्रियंवदा ने कहा है कि- आज दुष्यन्त के साथ उसका मिलन होना बहुत आवश्यक है । "अक्षमेयं कालहरणस्य" । (दुष्यन्त के बिना शकुन्तला अधिक समय जीवित नहीं रह सकेगी ।)

इसके बाद सहेलियों के सुझाव पर शकुन्तला ने मदनलेख लिख कर, उन दोनों को पढ कर सुनाया है । इस समय शकुन्तला को लेटे रह कर ही मदनलेख लिखना है । तत्पश्चात् उस मदनलेख के शब्दों को सुन कर, राजा रंगमंच पर प्रकट होता है और अनसूया की विज्ञप्ति पर दुष्यन्त, शकुन्तला जिस पर लेटी है, उसी शिलातल पर आसन ग्रहण करता है । जब राजा उसके साथ में बैठते है तब भी शकुन्तला को लेटी ही रहना है । अन्त में, दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद, दुष्यन्त शकुन्तला के सामने उसके पाद-संवाहन करने का प्रस्ताव रखे, तब तक शकुन्तला को लेटे ही रहना अनिवार्य है । इस तरह की दृश्य-योजना का समर्थन करनेवाला निम्नोक्त श्लोक देखना जरूरी है :--

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिभिरार्द्रवातान्,
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते[7] ।।

[7] इस पद्य में जो तीसरे-चौथे पाद का जो पदक्रम है वह काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ में उपलब्ध होता है । लेकिन कालान्तर में, उसको देवनागरी तथा दाक्षिणात्य पाठों में परिवर्तित किया गया है ।

यहाँ तृतीय पाद में कहा गया है कि शकुन्तला के साथ में बैठा हुआ दुष्यन्त (लेटी हुई) शकुन्तला के पद्मताम्रवर्णी चरणों को अपनी गोदी में लेकर, उसका संवाहन करने के लिए तत्पर है, उत्सुक है ।

परन्तु स्वयं कालिदास के द्वारा लिखा गया यह पाठ जब नटमण्डलियों के हाथ में पहुँचता है तब उसमें मंचनलक्ष्यी परिवर्तन होना शूरु हो गया है । भूतकाल के सूत्रधारों ने लेटी हुई शकुन्तला का दृश्य अभिनीत करवाने का मौका मिलने पर, उन्होंने उसको पहले प्रदूषित ही किया । जैसा कि, सुदूर अतीत में प्रचलित बने काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों को हम देखते हैं तो मालूम होता है कि शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था का बहुत दुरुपयोग हुआ है । दुष्यन्त के मुख से शकुन्तला के साथ (रंगमंच पर) सीधे सहशयन की माँग करवाई जाती है । (द्रष्टव्य हैः- मोक्ष्यामि । कदा । यदा सुरतरसज्ञो भविष्यामि, अपराधमिम्0, न एतावता तुष्टिर्भविष्यति, अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थना0, रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः0 इत्यादि गद्य वाक्य एवं पद्य श्लोक) । यह प्रथम स्तर का प्रदूषण है ।।

द्वितीय स्तर पर, परवर्ती काल के अन्य रंगकर्मियों ने शकुन्तला की लम्बे समय तक लेटी हुई अवस्था का समय कुछ कम करने का उपक्रम शूरु किया । उनके द्वारा, मदनलेख लिखने के मौके पर शकुन्तला को ("उपविष्टा चिन्तयति" जैसी नयी रंगसूचना जोड कर) शिलातल पर बिठाई जाती है । तथा मदनलेख के शब्दों को सुन कर, जब राजा दुष्यन्त रंगमंच पर प्रकट होता है तब उसी क्षण का फायदा उठाते हुए, उन रंगकर्मियों ने उसको लज्जा के साथ खडी भी कर दी है । किन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी करने की स्थिति को आकारित करने के लिए भी चार – पाँच तरह के पाठ-परिवर्तन किये गये हैं- ऐसा (इन एकत्र की गई पीचत्तर पाण्डुलिपियों को देखने से) मालूम होता है । तद्यथा –

(क) देवनागरी वाचना का बृहत्पाठ जिन प्रथम (क-1) यूथ की पाँच पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ है उनमें शकुन्तला के मदनलेख के शब्दों को सुन कर राजा उन सहेलियों के सामने प्रकट होता है । अनसूया अविलम्ब से सामने आये शकुन्तला के मनोरथ (यानि दुष्यन्त) का स्वागत करती है और उसी शिलातल पर राजा को आसन ग्रहण करने का कहती है । वहाँ पर, पहले तो शकुन्तला के शरीरसंताप के बारे में प्रश्न करता है । सखियों ने बताया कि अब औषधि उपलब्ध हो जाने पर वह शरीरताप शान्त हो जायेगा । उसके बाद, शकुन्तला लज्जा के साथ खडी होती है । इस शरमिंदी हो रही नायिका का निरूपण करनेवाला श्लोक भी यहां दिया गया है । तथा, उस क्षण पास में खडी शकुन्तला अपने करकमल के पत्र, (यानि अंगुलियों) की गिनती है- ऐसा अभिनय करती हुई नम्रमुखी खडी रहती है । यहाँ बृहत्पाठ के रंगकर्मियों ने "सलज्जं तिष्ठति" की रंगसूचना को यथार्थतया अभिनीत करवाने के लिए इस नवीन दृश्य का प्रक्षेप किया होगा ।

[इस प्रसंग का पाठ्यांश अवलोनीय हैः--

राजा – *(सहसोपसृत्य)*

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथाहि कुमुद्वतीं दिवसः ।। 3 – 19 ।।

सख्यौ – *(सहर्षम्) सागदं अविलंबिणो मणोरहस्स जधा चिन्तिदफलस्स । (स्वागतं यथा अविलम्बिनः मनोरथस्य यथा चिन्तितफलस्य ।)*

अनुसूया – *इदो सिलातलैकदेसे अणुगिण्हदु वयस्सो । (इतः शिलातलैकदेशे अनुगृह्णातु वयस्यः)*

राजा – *(उपविष्टः) अये, सह्यो भवत्सख्याः शरीरपरितापः ?।*

सख्यौ – *(सस्मितम्) लद्धोसहो संपयं उवसमं गमिस्सदि । (लब्धौषधः साम्प्रतमुपशमं गमिष्यति ।)*

(शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।)

राजा – न केवलं रूपेण बाला, व्रीडितेनापि मनोहरति ममेयम् ।

आवर्तितचारुमुखी, सलीलगत्या शनैः प्रदेशिन्या ।

गणयति करकमलस्य स्वनयनसदृशानि पत्राणि ।। 3 – 22 ।।[8]

(हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटण- पाण्डुलिपि क्रमांक 16630)

(ख) लेकिन बृहत्पाठ वाली अन्य (ख-1) यूथ की छह पाण्डुलिपियों में उपर्युक्त (नवीन) दृश्य की प्राप्ति नहीं होती है । परन्तु वहाँ तो, लज्जा के साथ शकुन्तला खडी हो जाने से पूर्व, दोनों सखियों ने जब बताया कि "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति ।" उसके बाद, शकुन्तला को केवल लज्जा के साथ खडी होती हुई कही है । (इन पाण्डुलिपियों के क्रमांक इस तरह के हैः—1. आनन्दाश्रम 52-517, 2. पाटण की 6654, 3. जोधपुर की 39447, 4. भरतपुर की 7578, 5. वाराणसी की 87 तथा वृन्दावन की 6370.)

(ग) उपर्युक्त प्रस्तुति के अलावा दूसरे तरह की प्रस्तुति (क-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में देखने को मिलती है । इनमें, शिलातल पर बैठी हुई शकुन्तला को खडी करने के लिए "लब्धोषधा उपशमं गमिष्यति ।" वाक्य के उपरान्त शकुन्तला को मेघनादाहता मयूरी का उपमान देकर, लज्जा के साथ खडी होती हुई कही गई है । जैसे कि, "अनसूया – पिअंवदे, पेक्ख पेक्ख, मेहवादाहदं मिअगिह्मिमोरीं निमिस्संतमित्तकेन पच्चागदजीविअं पिअसहीं । (प्रियंवदे, पश्य पश्य । मेघवाताहतां मृतग्रीष्ममयूरीं निमिषमात्रकेन प्रत्यागतजीवितां प्रियसखीम् ।)" (इन पाण्डुलिपियों के क्रमांक हैः- 1. चंडीगढ की 5448, 2. बीकानेर की 193, 3. डेक्कन की 10948, 4. बी. एल. इन्स्टीट्युट की 3964, 5. कोटा की 1322, 6. कोटा की 5133, 7. जयपुर की 1223, 8. जयपुर की 1224, 9. उज्जयिनी की 5875, 10. गंगानाथ झा की 49352, 11. गंगानाथ झा की 2851, 12. उज्जयिनी की 15225, 13. उज्जयिनी की 1374, 14. डेक्कन की 10730, 15. पेन्सिल्वानिया की 380-54.)

(घ) चौथे यानि (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में "लब्धोषधा उपशमं0" इत्यादि, एवं "मेघनादाहता मयूरी" का उपमान इत्यादि सब हटा करके, एक साथ में दो रंगसूचनाएँ दी जाती है । जैसे कि, "राजा उपविशति । शकुन्तला सलज्जं तिष्ठति ।" इस (ख-2) यूथ की पाण्डुलिपियों में संक्षिप्ततर पाठ बनाया गया है, अतः बिना किसी गद्य वाक्य, बिना किसी उपमान का प्रयोग किये, सीधे ही नायक को बिठाया जाता है, और बिजली के झटके के साथ शकुन्तला को खडी की जाती है । इस तरह की प्रस्तुति में किसी भी तरह की नाटकीयता नहीं है ।। (इन पाण्डुलिपियों की संख्या सर्वाधिक है और वे सभी परवर्ती काल में, यानि दो सो वर्ष पहले ही बहुशः लिखी गई हैं ।)

(ङ) किसी अन्य रंगकर्मियों ने बैठी हुई शकुन्तला को खडी करने की जल्दबाजी नहीं की । उन लोगों ने, अनसूया ने जब राजा को शिलातल पर आसन ग्रहण करने की विज्ञप्ति की है, तब वहाँ रंगसूचना दी है कि- "शकुन्तला पादौ अपसारयति" । यानि बैठी हुई शकुन्तला ने अपने दोनों पाँव सिकुड कर, राजा को शिलातल पर बैठने के लिए थोडी जगह बनाई । जिसके कारण, अब

---

[8] इस श्लोक में आर्या छन्द का प्रयोग है । जैसे कि, आवर्तित । चारुमु । खी, (12 मात्राएँ), सलील । गत्या । शनैः प्र । देशि । न्या । गणयति । करकम । लस्य । स्वनयन । सदृशा । नि । पत्राणि ।। (डॉ. मनसुखभाई मोलिया जी, राजकोट का मैं आभारी हूँ, इस आर्या की सही पहचान देने के लिए ।)

प्रेक्षकों कुछ क्षणों के लिए नायक-नायिका दोनों शिलातल पर साथ में बैठे हुए दिखाई देंगे। ऐसे दृश्य का निरूपण कुल मिला कर पाँच पाण्डुलिपियों में देखा जाता है। (जैसे कि, सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, उज्जयिनी की 5875, 15225, 1374 क्रमांकवाली, गंगानाथ रिसर्च इन्स्टीट्युट, प्रयागराज की 49352 क्रमांकवाली एवं डेक्कन कॉलेज, पूणें की 10730 क्रमांक वाली पाण्डुलिपियाँ द्रष्टव्य हैं।)

*** * * *** *** * * *** *** * * *** *** * * *** *** * * *** *** * * ***

तृतीय अंक के आरम्भ में, शकुन्तला का प्रवेश कुसुमास्तरण पर लेटी हुई अवस्था में हुआ है ऐसा कहा गया है। कालान्तर में, नटमण्डलियों ने उसी शयनावस्था का समय घटा कर, उसमें उपर्युक्त पञ्चविध स्थित्यन्तर दिखायें हैं। आगे यह देखना भी जरूरी है कि लज्जा के साथ पास में खडी रही उस शकुन्तला को अब दुष्यन्त (जो स्वयं शिलातल पर बैठा हुआ है, वह) कैसे और किन शब्दों में उसके पाद-संवाहन का प्रस्ताव करेगा ?। इस चर्चा के आरम्भ में हमने देखा है कवि-संकल्पित योजना के अनुसार "कुसुमशयना शकुन्तला" के दृश्य की प्रस्तुति में बहुत लम्बे समय तक शकुन्तला को लेटे ही रहना है। दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद, जब दुष्यन्त "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ" शब्दों के साथ शकुन्तला का पाद-संवाहन करने का जो प्रस्ताव रखता है, वह इसी लिए सम्भवित है कि शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में रन्तर बनी रही है। लेकिन परवर्ती काल के रंगकर्मियों ने जब शकुन्तला को मदनलेख लिखने के निमित्त से बैठी कर दी है और बाद में लज्जा के साथ, उस (शिलातल पर) बैठे हुए दुष्यन्त के पास में, खडी भी कर दी है, तब यह कैसे सम्भवित होगा ?। इस विसंगति को मिटाने के लिए, परवर्ती काल के रंगकर्मिओं ने उस (काश्मीरी-मैथिली-बंगाली वाचनाओं के) परम्परागत श्लोक के पदक्रम को बदल दिया है। जैसे कि, "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते ।।" (काश्मीरी वाचना में 3-20) के स्थान पर, पाठभेद करके (इन देवनागरी पाण्डुलिपियों में) "अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ" ऐसी शब्दानुपूर्वी बना दी है !।

किन्तु इस नवीन पाठान्तर के कारण, दुष्यन्त के शब्दों का अर्थ अब ऐसा होगा कि (शिलातल पर बैठा हुआ) दुष्यन्त अपने पास में खडी रही शकुन्तला को उठा कर अपनी गोदी में पहले बिठायेगा और उसके बाद, वह उसका पाद-संवाहन करेगा !। क्योंकि अब (नवीन पाठभेद के अनुसार) "निधाय" जैसे ल्यबन्त कृदन्त के पीछे (संनिधि में) "करभोरु" ऐसा सम्बोधन पद आया है, अतः "त्वाम्" (कर्म-वाचक) पद को अध्याहृत पद के रूप में लेना होगा। जिसका अन्वय होगाः- "हे करभोरु ! (मदीये) अंके त्वां (शकुन्तलां) निधाय, ते (तव) पद्मताम्रौ चरणौ यथासुखं संवाहयामि। (अर्थात्- हे करभोरु, मेरी गोदी में तुझे बिठा कर, तेरे पद्मताम्र- वर्ण वाले चरणों का संवाहन कर दूँ, जो तुम्हें सुखकर हो)"।

*** * * *** *** * * ***

उपर्युक्त "किं शीतलैः क्लमविनोदिभिः .... संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।" पद्य में रखे गये नये पाठभेद से एक नयी विसंगति भी आकारित हुई है- जिसकी ओर भी किसी भी पाठसम्पादक का अद्यावधि ध्यान नहीं गया है। शकुन्तला को एक बार "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से लज्जा के साथ खडी हुई घोषित तो कर दी है। किन्तु बाद में, उपरि निर्दिष्ट नये पाठभेद वाले शब्दों से, दुष्यन्त ने उसको अपनी गोदी में बिठा कर पाद-संवाहन करने का जब प्रस्ताव रखा तब, उसको सुन कर शकुन्तला बोलती है कि- "न माननीयेष्वात्मानम् अपराधयिष्ये"। (आप जैसे माननीय व्यक्ति के पास मैं मेरा पाद-संवाहन करवा कर अपराधी बनना नहीं चाहती हूँ।) इसी वाक्य के बाद, जो एक रंगसूचना (इन सभी 75 पाण्डुलिपियों

में) दी गई है, वह इस प्रकार की है:- "उत्थाय गन्तुम् इच्छति" । (यानि शकुन्तला उठ कर वहाँ से चले जाने की इच्छा कर रही है ।) यह रंगसूचना स्पष्टतया पूर्वापर निरूपण में विसंगति पैदा कर रही है । क्योंकि पहले जिस शकुन्तला को "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी की गई है, वह अब उठ कर कैसे चले जाने की इच्छा करेगी ?।

निष्कर्षः-- एकत्र की गई इन 75 पाण्डुलिपियों में संचरित हुए देवनागरी वाचना के बहुविध पाठ की इस तरह की परिवर्तन-यात्रा का उद्घाटन होने से, इस सर्वश्रेष्ठ माने गये एवं लोकप्रिय बने नाटक (के तृतीयांक) की अन्धकारग्रस्त मंचन-यात्रा पर आश्चर्यकारक नया प्रकाश पहली बार पड रहा है ।।

[8]

पूर्वोक्त दो समस्याओं का समाधान (Answers of the said problems) **:--** अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रचलित पाठ में अन्तर्निहित दो समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए खण्ड [1] तथा खण्ड [2] में इस अनुसन्धान कार्य को प्रवर्तित करने का कारण कहा गया था । वहाँ बताया है कि आधुनिक काल के संस्करणों में एकरूपता नहीं हैं । जैसे कि, खण्ड [1] में बताया है कि ओटो बोटलिंग, मोनियर विलियम्स, प्रोफे. पी.एन. पाटणकर, श्रीगौरीनाथ शास्त्री एवं पं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी आदि अनेक विद्वान् सम्पादकों ने अपने अपने सम्पादनों में, इस नाटक के तृतीयांक के आरम्भिक श्लोकों में से पृथक् पृथक् संख्या में श्लोकों को स्वीकारे हैं । एवञ्च, जिन श्लोकों को स्वीकारे हैं उनके उपस्थिति-क्रम में भी उनके सम्पादनों में एकरूपता नहीं हैं । यहाँ ध्यातव्य है कि यह समस्या आरम्भिक श्लोकों में ही केन्द्रित हुई है । ऐसा क्यूँ ? इस प्रश्न का समाधान (इन 75 पाण्डुलिपियों के परीक्षण के बाद) अब मिल जाता है । तद्यथा- देवनागरी वाचना के प्राचीनतम बृहत्पाठ में जब संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति शूरु हुई थी, तब सब से पहले तो नायक-नायिका के नैसर्गिक प्रेम-सहचार के दो दृश्यों को हटाये गये । तथा (क-1) यूथ की पाण्डुलिपियों में मिलने वाला (शकुन्तला की लज्जा का निरूपण करने वाला) नया दाखिल किया गया दृश्य भी हटाया गया । तत्पश्चात् (तृतीयांक के आरम्भ में आने वाले=) दुष्यन्त की कामयमानावस्था का निरूपण करने वाले कतिपय श्लोक, (जो हकीकत में तो मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में पहले प्रक्षिप्त किये गये थे) उनमें से कतिपय को स्वीकारने या नहीं स्वीकारने के कारण उपर्युक्त सम्पादनों में एकरूपता नहीं दिखाई रही है । तथा उन स्वीकार्य या अस्वीकार्य बनें श्लोकों को किस क्रम में उपस्थित करना वह भी इन एकत्र की गई पाण्डुलिपियों में जिस तरह की बहुरूपता (विरूपता) प्रतिबिम्बित हो रही है- उसी का परिणाम है । दुष्यन्त की कामयमानावस्था का निरूपण करने वाले सभी श्लोकों को यदि स्वीकार्य रखे जाते हैं तो वह 31, 30 या 29 श्लोकों वाला संक्षिप्त पाठ बन जाता है । तीसरे स्तर पर, जब इन आरम्भिक श्लोकों में ज्यादा कटौती की जाती है, तो 24 श्लोक वाला संक्षिप्ततर पाठ अन्त में बाकी रह जाता है, (जिसको हमने पठन-पाठन में "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" –न्याय से, अर्थात् बिना किसी अनुसन्धान किये, "कालिदास-प्रणीत मौलिक-पाठ" मान कर स्वीकार लिया है) । किन्तु इन दस्तावेजिय प्रमाणों से अब प्राप्त हुई दृष्टि से जब देखा जायेगा तो आधुनिक विद्वानों के संस्करणों में (तृतीयांक के केवल आरम्भिक श्लोकों में ही) क्यूँ एकरूपता नहीं है- उसका उत्तर मिल जाता है ।।

उसी तरह से, उपर्युक्त खण्ड [7] में जो परामर्श प्रस्तुत किया है उससे खण्ड [2] में वर्णित की गई क्षतियों में से अनेक का समाधान भी मिल जाता है । विशेषतया, "सलज्जं तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खडी की गई शकुन्तला को "उत्थाय गन्तुमिच्छति" रंगसूचना से फिर से "खडी होकर जाना चाहती है" ऐसा क्यूँ कहा गया है ? वह स्पष्ट होता है ।।

[9]

उपसंहार (Various observations & conclusion): -

1. वर्तमान में देवनागरी वाचना का जो लघुपाठ सुप्रचलित हुआ है, वह मौलिक तो कथमपि नहीं है, बल्कि अनेक तरह की विकृतियों से युक्त है, एवं संक्षेपीकरण की व्याधि से पीडित है । केवल देवनागरी लिपि में लिखी गई बहुसंख्यक (75) पाण्डुलिपियों का व्यापक विश्लेषण करने से पहली बार मालूम हो रहा है कि इस वाचना के त्रिविध (या चतुर्विध) पाठ इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ है । अद्यावधि संस्कृतानुरागियों को यह ज्ञात ही नहीं है कि इस देवनागरी वाचना का पाठ कितने स्वरूपों वाला है । केवल (अन्तिम चरण पर बना, 190 श्लोक वाला) संक्षिप्ततर लघुपाठ ही सब को विदित हुआ है ।
2. इन पाण्डुलिपियों में संचरित हुए त्रिविध पाठों की भेदक-रेखा कहाँ से खिंचनी चाहिए ? उसका परामर्श भी अभी तक देखने-सुनने में नहीं आया है । यदि इस देवनागरी वाचना के त्रिविध रूपों को सूत्र रूप से पहचानना चाहते हो तो वे इस तरह के हैः- 1. प्राचीनतम बृहत्पाठ । जिसमें तृतीयांक के तीन दृश्य ध्यानास्पद है । (क) मदनलेख को सुन कर रंगमंच पर उपस्थित हुए दुष्यन्त ने शकुन्तला के लज्जा के भावों का निरूपण किया है और उसके दौरान शकुन्तला ने अपने हाथ में रखे कमल पुष्प के पत्रों को (अथवा करकमल की अंगुलियों को) गिनने की चेष्टा का अभिनय किया है ।। इस अंक के मध्य भाग में, (गान्धर्वेण विवाहेन0 श्लोक के बाद), नैसर्गिक प्रेम-सहचार के दो दृश्य प्राप्त होते हैं । जिन में (ख) दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाया है, और (ग) पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र का प्रमार्जन कर दिया है । इन तीन दृश्यों में से पहला दृश्य इस देवनागरी वाचना के पाठ की निजी विशेषता है । किन्तु (ख) एवं (ग) में उल्लिखित दो दृश्य काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों में से लिये गये हैं ।। जिसके कारण, देवनागरी वाचना के इस बृहत्पाठ का तृतीयांक 42 श्लोक वाला बना है ।।
3. पाटण की 16630 क्रमांक की पाण्डुलिपि में उपलब्ध हो रहा बृहत्पाठ भले ही उस पाण्डुलिपि के लेखन-काल के अनुसार पंदरवी या सोलहवी शती का लिखा हुआ हो, किन्तु उस प्रति में संचरित हुआ पाठ तो दशवी-ग्यारहवी शती में भी प्रचलित था । क्योंकि इन 75 देवनागरी पाण्डुलिपियों में से (क-1) यूथ की पाँच एवं (ख-1) यूथ की दो पाण्डुलिपियों में जो बृहत्पाठ सुरक्षित रहा है, वही पाठ भोजराज के समय (ई.स.1050) में भी प्रचलित था ऐसा सप्रमाण हम कह सकते है । क्योंकि इन पाण्डुलिपियों में मिल रहा, तृतीयांक का यह ("विमर्शच्छेदि वचनम् । पर्याप्तमेतावता कामिनः") वाक्य भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश[9] में यथातथ उद्धृत किया हुआ मिलता है ।। यानि देवनागरी वाचना की इस विशिष्ट पाठपरम्परा कम से कम ग्यारहवी शती से चली आ रही है- ऐसा सिद्ध हो रहा है । देवनागरी बृहत्पाठ की प्राचीनता का इतिहास अब हमारे सामने आ गया है । यह जानकारी ही सब से बडी उपलब्धि है ।।
4. किन्तु जब अल्प समय में इस नाटक का मंचन करने का सोचा गया होगा तब पूर्वोक्त बृहत्पाठ में संक्षेपीकरण की प्रक्रिया शूरु हुई । इस मौके पर उपर्युक्त तीनों दृश्यों को हटाये गये । लेकिन दुष्यन्त की कामयमानावस्था का मंचन करवाने के लिए, तृतीयांक के आरम्भ में मालिनी के तट पर घुमता

---

[9] द्रष्टव्य हैः- शृङ्गारप्रकाशः 29-105, पृष्ठ- 1300 (सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रिय कला-केन्द्र, दिल्ली, 2007)

फिरता दुष्यन्त सात-आठ श्लोक बोलता है । जिसके कारण इस अंक का कलेवर 30 या 29 श्लोक वाला बनाया गया ।। किन्तु कालक्रम से उन आरम्भिक श्लोकों को भी हटाये गये, जिसके कारण 24 श्लोक वाला संक्षिप्ततर पाठ बच गया । वर्तमान में सुप्रचलित बने इसी पाठ को मौलिक पाठ मान लेने की मुग्धता में साहित्यजगत् फसा हुआ है । व्यापक स्तर पर दस्तावेजीय प्रमाणों (पाण्डुलिपियों) के आधार पर गहरे अनुसन्धान किये बिना, जो भी पाठ प्रकाशित होते रहे हैं, उन्होंने हमें कालिदास के मूल पाठ से बहुत दूर फैंक दिये हैं ।।

5. इस नाटक की प्राकृत उक्तियों का संस्कृतच्छायानुवाद (प्राकृतविवृति) देनेवाली पाण्डुलिपियों में भी इस नाटक की देवनागरी वाचना के पूर्वोक्त त्रिविध पाठों का संचरण हुआ है । पूणें की आनन्दाश्रम शोध संस्थान की एक पाण्डुलिपि (क्रमांक: एस(4) 52- 519) में तो इस नाटक के बृहत्पाठ का भी समाश्रयण करके, उसका संस्कृतछायानुवाद दिया गया है ।
6. इन प्राकृतच्छायानुवादों वाली त्रिविध पाण्डुलिपियों से यह भी ज्ञात होता है कि केवल देवनागरी वाचना के पाठ का ही छायानुवाद प्रस्तुत करने वाली पाण्डुलिपियाँ आज उपलब्ध हो रही है । किन्तु मैथिली या बंगाली वाचनाओं के पाठ का संस्कृतच्छायानुवाद किसीने बनाया हो तो वह ज्ञात नहीं है । वह प्रकाश में नहीं आया है ।
7. डी.ए.वी. कॉलेज, चंडीगढ की पाण्डुलिपि (क्रमांक - 5448) में जो लघुपाठ मिलता है वह स्पष्टतया काश्मीरी शारदा-पाठ का ही सीधा संक्षेपीकरण है- ऐसा असंदिग्धतया सिद्ध होता है । जिसके परिणाम स्वरूप अब यह पूर्वावधारणा तूट जाती है कि केवल दक्षिणभारत के चाक्यारों के द्वारा ही संस्कृत नाटकों का संक्षेपीकरण करने का आरम्भ किया गया था । क्योंकि चंडीगढ की उपर्युक्त पाण्डुलिपि इस बात की गवाह बनती है कि इस नाटक के बृहत्पाठ का संक्षेपीकरण सारे देश में एक साथ, एक समान रूप से होता रहा होगा ।
8. तथा काश्मीरी बृहत्पाठ का संक्षेपीकरण देनेवाली चंडीगढ में संगृहीत 5448 क्रमांक की पाण्डुलिपि ऐसा भी बोल रही है कि " पूर्व में प्रणीत इस नाटक के लघुपाठ में प्रक्षेप करके, कालान्तर में बृहत्पाठ बनाया गया होगा" –ऐसी पूर्वावधारणा भी अब खण्डित हो रही है । हकीकत में तो पहला (काश्मीरी वाचना का) बृहत्पाठ ही था, तत्पश्चात् उसमें संक्षेपीकरण करके लघुपाठ बनाया गया है ।
9. दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठभेदों का तुलनात्मक अध्ययन करके, मैंने "नाट्यम्" में जो एक अभिप्राय प्रकाशित किया था । (जिसमें कहा गया था कि दाक्षिणात्य वाचना में आन्तरिक सम्भावनायुक्त पाठान्तरों की रक्षा ज्यादा हुई है, उसी लिए वह पाठ देवनागरी के संक्षिप्त पाठ की अपेक्षा से पहले बना होगा । वह अभिप्राय, पूर्वावधारणा भी बदलनी होगी । जैसे कि, सभी प्रदेशों की विभिन्न लिपिओं में चल रही पाठपरम्पराओं में एक समान रूप से संक्षेपीकरण किया गया है । तथा संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति का पौर्वापर्य ढूँढने के लिए कुछ अन्य प्रयास करना होगा ।।

-----8888------